।। ॐ मणि पद्मे हुं ।।

॥ सोऽहं॥

शक्ति अनुसंधान केन्द्र

-: जप, ध्यान और मंत्र साधना :-

ध्यानमूलं गुरुर्मूर्त्ति, पूजामूलं गुरुर्पदम्। मंत्रमूलं गुरुर्वाक्यं, मोक्षमूलं गुर्रुकृपां।।

ॐ स्फटिक रजतवर्णं मौक्तिकीमक्षमालाममृत कलशविद्या ज्ञानमुद्राः।

कराग्रैः दधतमुरगकक्षं चन्द्रचूड़ं त्रिनेत्रं, विधृतविविधभूषं दक्षिणामूर्तिम् इडे।।

विशेष आकर्षण

गुरु साधना

मंत्र साधना में ध्यान

स्थूल और सूक्ष्म ध्यान

सक्रिय और निष्क्रिय ध्यान

ध्यान पर अन्य महापुरुषों के विचार

सौजन्य से :– **श्री अभिषेक कुमार**

(श्री विद्या के उपासक एवं महाविद्याओं के सिद्ध साधक)

वन्दे गुरुर्मण्डलम्

।। नमः निखिलेश्वर्यायै ।।

—: श्री निखिल पंचकम् :—

ॐ नमः निखलेश्वर्यायै कल्याण्यै ते नमो नमः। नमस्ते रुद्र रूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमो नमः।। 1।।

नमस्ते क्लेश हारिण्यै मंगलायै नमो नमः। हरति सर्व व्याधिनां श्रेष्ठ ऋष्यै नमो नमः।। 2।।

शिष्यत्व विष नाशिन्यै पूर्णतायै नमोस्तुते। त्रिविध ताप संहर्त्यै ज्ञान दात्र्यै नमो नमः।। 3।।

शांति सौभाग्य कारिण्यै शुद्ध मूर्त्यै नमोस्तुते। क्षमावत्यै सुधावर्त्यै तेज वर्त्यै नमो नमः।। 4।।

नमस्ते मंत्र रूपिण्यै तंत्र रूप्यै नमोस्तुते। ज्योतिषं ज्ञान वैराग्यं पूर्ण दिव्य नमो नमः।। 5।।

—: माहात्म्य :—

य इदं पठतिं स्तोत्रं श्रृणुयाद् श्रद्धयान्वितं। सर्व पाप विमुच्यन्ते सिद्धयोगि च संभवे।। 1।।

रोगस्थो रोग तं मुच्येत् विपदा त्राणया दपि। सर्व सिद्धि भवेदस्य दिव्य देह च संभवे।। 2।।

निखिलेश्वर्य पंचकं य नित्यं यो पठते नरः। सर्वान् कामानमवाप्नोति सिद्धाश्रमो च वाप्नुयात्।। 3।।

—: जप, ध्यान और मंत्र साधना :—

(Adoration, Meditation & Spell-Devotion)

गुरू महिमा — गुरू साक्षात् भगवत स्वरूप ही हैं। उनके दर्शन, स्पर्श और शब्द मात्र से ही तत्व ज्ञान की प्राप्ति संभव है। गुरू तत्व की संपूर्ण शक्ति गुरू मंत्र में ही नीहित है। गुरू प्रदत्त बीज मंत्र शिष्य के हृदय में अनंत प्रकाश का प्रज्वलन कर देता है, लेकिन यह शिष्य की योग्यता पर निर्भर करता है।

यों तो सभी मंत्र प्रणव के स्वरूप ही हैं, परंतु गुरू प्रदत मंत्र एक अलौकिक शक्ति से परिपूर्ण होता है, जिससे विशुद्ध प्रणवस्वरूप ध्वनि निर्गत होती है, तथा अधिकारी को चैतन्य स्वरूप में प्रतिष्ठित कर देती है। गुरू—मंत्र के शब्दों का स्वरूप शुद्ध और सात्विक होता है, जो चिन्मय है। चिन्मय मंत्र चित्त—शक्ति का ही केंद्र होता है, जिससे विशुद्ध चैतन्य प्रवाह प्रवाहित होता है।

गुरू मंत्र का उद्देश्य मानव मन को अंतर्मुख कर देना तथा उसे चिद्रूप शुद्ध शब्द की उपलब्धी कराना है। यों तो ब्रह्म तत्व सर्वत्र व्याप्त है, किंतु उसके साक्षात्कार के लिए गुरूमंत्र अपेक्षित है। जिस प्रकार काष्ठ में निहित अग्नि का साक्षत्कार संघर्ष से होता है, उसी प्रकार मंत्र द्वारा हृदय से ब्रह्माग्नि का साक्षात्कार होता है।

एकाग्रता अभ्यासजन्य है। धीरे—धीरे ही एकाग्रता होने लगती है। परंतु गुरूमंत्र का जाप किसी भी रूप में किया जाए, उसका फल अवश्य होता है।

जप एवं ध्यान की महिमा — चूंकि योग साधना कठिन और श्रमसाध्य है, इसलिए गृहस्थों के लिए इसका विधान नहीं है। उन्हें तो जप और ध्यान करना चाहिए। जप और ध्यान भी योग ही हैं। इनसे भी चित्त में एकाग्रता आती है। यही भाव समाधि होती है। इसी से भगवदाकार वृत्ति होती है। वृत्ति भाव की दृढ़ता से हो जाती है।

जप और ध्यान के लिए भी शरीर की शुद्धि आवश्यक है। यम और नियम की उपयोगिता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। इसलिए इसका पालन तो प्रत्येक गृहस्थ को यथा साध्य करना ही चाहिए।

जब दोनों नथनों से समान गति से स्वर चलता है, तो योग साधना अथवा भजन (जप) करें। प्राणायाम किसी बीजमंत्र अथवा ओंकार के जप के साथ करना चाहिए।

ईश्वर की प्राप्ति (भक्ति) के अन्य भी प्रकार हैं, और भी विधियाँ हैं, परंतु जप और ध्यान सब साधनों में मुख्य है। भावना रूप ध्यान से पूर्व और प्श्चात् जप करने का क्रम होना चाहिए। इसलिए जप करना चाहिए, चाहें जिसका भी कर सकें। **'हरि ॐ तत्सत्।।**

मंत्र साधना में ध्यान

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्— योग दर्शन, 3/2

जहाँ चित्त को ठहराया जाए, उसी में वृति का एक सा बना रहना ध्यान है। किसी देश विशेष में चित्त लगाना धारणा है, और ध्येय में चित्तवृति में समान प्रवाह की भांति लगा रहे, दूसरी कोई वृति बीच में नहीं आवे तो वही ध्यान है।

धारणा की परिपक्वावस्था को ही ध्यान कहते हैं, जिसका ध्यान किया जाता है, उसे ध्येय कहा जाता है, और ध्याता तथा ध्येय को मिलाने वाली क्रिया ही ध्यान है। इस प्रकार चित्त की एकाग्रता ही ध्यान का प्रयोजन है। ध्यान की स्थिति मन के राग—रहित निर्मल बनने पर ही बनती है। महर्षि कपिल ने इसलिए स्पष्ट कहा भी है — **ध्यानं निर्विषसंयमनः** (सांख्य दर्शन, 6/25)

अर्थात् मन का निविर्षय हो जाना ही ध्यान है। अतः ध्यान वह प्रक्रिया है, जिसमें मन को बाहरी वृत्तियों से हटाकर अंतर्मुखी करने का प्रयास किया जाता है। धीरे—धीरे मन की चंचलता समाप्त हो जाती है, और वह वृतिहीन हो जाता है। मन की चंचलता के कारण विषय चिंतन आदि से दुःख क्लेश जनित अशांति बनी रहती है, किंतु स्थिर मन के कारण परमशान्ति एवं आनंद की अनुभूति होती है।

प्रस्तुति :— श्री अभिषेक कुमार, (मंत्र, तंत्र यंत्र विशेषज्ञ, महाविद्याओं के सिद्ध साधक एवं शक्ति सिद्धांत के व्याख्याता)
परमपूज्य गुरुदेव श्री निखिलेश्वरानंद जी महाराज के परम प्रिय शिष्य, शक्ति अनुसंधान केंद्र, मो0:— हजारी, नून का चौराहा, पटना सिटी.
Mob:- 9852208378, 9525719407. E-mail:- shaktianusandhankendra@gmail.com

ॐ तस्य निश्चिन्तनैध्यानम् – ॐ का निरंतर स्मरण ही उसका ध्यान है।

'आत्मपूजोपनिषद्' का यह विचार तो ब्रह्म के प्रतीक और उसके स्वरूप के निरंतर चिंतन मनन को ही ध्यान मानता है। एक महामंत्र है, प्रतीक है उस परम चैतन्य परब्रह्म का। यह एक अदृश्य कुंजी है। अतः मंत्र का सतत् स्मरण ही ध्यान है। मंत्र–साधना में निरंतर मंत्र जाप से ही ध्यान की स्थिति बनती है। यदि हम उसका सतत् स्मरण करें, प्रत्येक वस्तु में, प्रत्येक घटना में, प्रत्येक वृति में, उसी को देखें, भीतर बाहर उसी को अनुभव करें, हर चीज को उसी की स्मृति मानें, तो इस स्थिति में चेतना का विस्फोट होता है। यही वास्तविक सजगता है। यही जागरूकता ध्यान है। जब हम मंत्र जप के मानस संघर्षण से पर्याप्त एकाग्रता पा लेते हैं, मन को संस्कारित कर लेते हैं, तब इष्ट का ध्यान करते हैं और मंत्र चेतना से अपनी अंतश्चेतना का ओत–प्रोत महसूस करते हैं। मंत्र जप से ध्यान, ध्यान से मंत्र जप और फिर ध्यान, निरंतर इस अभ्यास से साधक किसी भी क्षण पूरे अस्तित्वच को झंकृत होता हुआ, अनुभव कर सकता है। यह झंकृति आनंदमयी होती है। यह मंत्र सिद्धि है, जब मंत्र की ध्वनि ही अस्तित्व में विलिन हो जाती है, और अस्तित्व मंत्र ध्वनि में लय हो जाती है। दोनों अलग–अलग नहीं रहते। वे एक हो जाते हैं। यही तदात्म्यता सिद्धि है। यह सिद्धि मंत्र साधक को निरंतर जप, ध्यान और फिर जप और ध्यान इसी साधना से ही प्राप्त की जा सकती है। इसलिए मंत्र साधना में भी ध्यान एक अनिवार्य अंग माना गया है।

दो अरणियों के घर्षण से अग्नि उत्पन्न होती है। एक अरणि है – हृदय और दूसरी अरणी है – **'भगवन्नाम'**। दोनों के घर्षण से ईश्वर का साक्षात्कार निश्चय ही होगा।

यहाँ घर्षण करना ही जाप है, और भगवन्नाम है – मंत्र। मंत्र के जाप से स्फोट होता है – अंदर ही अंदर। चेतना सूक्ष्मतम रूप में सतत जागरूक होकर अनंत हो जाती है। भीतर ही में अनंत ज्योति जगमगा उठती है। यही भगवद्दर्शन है, आत्म साक्षात्कार है, मंत्र चैतन्य का जागरण है।

आधुनिक मनोविज्ञान हमारे मन को, हमारी चेतना को तीन स्तरों में विभाजित करता है – (1) निम्न स्तर मन या बाह्यय चेतना (2) मध्यम मन या उप चेतना और (3) उच्चतर मन या अवचेतना। सारी सहज प्रवृतियाँ और वृतियाँ चेतन मन की हैं। हमारा सोचना समझना, बोलना, विचारना, काम करना – यह बाहरी खोल है, आवरण है। यह हमारे व्यक्तित्व का बाहरी रूप है। किंतु हमारी सारी कुंठाओं, दमित वासनाओं की तह पर तह जमती चली जाती है, और अवचेतन मन उसके संस्कारों से लिपटा रहता है जब तक हम इन वासनाओं से मुक्त नहीं होते, तब तक परमानंद की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब भी हम अपनी वृतियों को अंतर्मुखी करते हैं, तब इन वासनाओं की तहें एक–एक कर खुलती जाती हैं, और विलीन होती जाती हैं। ध्यान में अच्छी–बुरी अनुभूतियों के रूप में इन्हीं दमित–लम्बित वासनाओं का अतृप्ति का, अभाव का निराकरण होने लगता है और हम धीरे–धीरे मन की गहराइयों में उतरते चले जाते हैं, तो हमारे सामने मन की अनंत शक्ति का दर्शन प्रत्यक्ष होने लगता है।

यह सामान्य अनुभव है कि ध्यान के प्रारम्भिक अभ्यास में लोग उटपटांग चीजें देखने लगते हैं, या अपने अंदर की ऐसी कुण्ठाओं का सामना करते हैं, जिनका पता सामान्यतः आयुपर्यन्त उन्हें नहीं हो पाता। इन मूल व्याधियों का पता लगने पर इन्हें दूर करना संभव हो जाता है, और जीवन आनंद से भर उठता है। बहुत से लोग शरीर की अंतरंग क्रिया के प्रति अत्यंत सजग हो उठते हैं। ध्यान की उच्चत्तर स्थिति में चेतना आनंद की ओर बढ़ती है। वह अधिचेतना का क्षेत्र है। बुद्धि के क्षेत्र से ऊपर जाकर चेतना सत्य के निकटस्थ होती है, साधक प्रेरणा और प्रकाश के आयामों में प्रवेश करता है। सत्ता के ऐसे गहनतम सत्य और पक्ष प्रकट होने लगते हैं, जो अब तक असंभव ही समझे जाते हैं। मंत्र साधक जब ध्यान प्रारंभ करता है, तो उसे विलक्षण अनुभव होने लगते हैं, वे भूत–प्रेत और अन्यान्य भयानक आकृतियों के दर्शन करने लगते हैं। ये प्रेत कहीं बाहर से नहीं आते। ये साधक के भीतर की भावनायें ही होती हैं। उसके राग, द्वेष, भय, काम, क्रोधादि अन्तः प्रवृतियाँ ही उसके समक्ष प्रकट होती हैं। यह प्रकटीकरण भी इतना सहसा और मूर्त होता है कि बहुत से लोग घबड़ा उठते हैं, किंतु इसमें घबराने की कोई बात नहीं होती। भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं होती। ये सारे रूप हमारे भीतर से ही उत्पन्न होते हैं। ये सभी आकृतियाँ साधक के मन की विकृतियों के ही प्रतिबिम्ब हैं। ध्यान में ये एक–एक कर सामने आते हैं, वेश धारण करके, छद्म रूप धारण करके। अंतश्चेतना की प्रकृति ही है, पहेलियों के सृजन में रस लेना। अतः हमारा भय,

हमारे विकार ही नाना रूपों में प्रत्यक्ष होते हैं, ताकि हम उन्हें पहचान जायें और उनका समूल नाश कर दें। जब वे खत्म हो जायेंगे, तब वास्तविक आनंद का दरवाजा खुलेगा। जब साधक सतर्क होकर भीतर की ओर मुड़ता है, तो उस का नियंत्रण हो जाता है, मन पर, मन की क्रियाओं पर। अतः चित्त की गहराई में स्थित भय, क्रोध, काम, द्वेष, रागादि मानसिक दोषों को दूर करके ही साधक ध्यान की उच्चतर अवस्था में पहुंच सकता है। इनके रहते मन उन्मुक्त नहीं होता, चेतना विस्मृत नहीं होती। मनुष्य के भीतर सन्निहित अपार शक्ति की कुंजी हाथ नहीं लगती। चित्त की गहराइयों में उतरने पर चेतना जागरित होती है। सजग चेतना शक्तिशाली चुंम्बक है, जो विकारों को निकाल फेंकती है।

ध्यान जैसे—जैसे जमता है, साधक की चेतना फैलती जाती है, विकसित होने लगती है। उसकी प्रतिभा के, उसके शक्ति के पुष्प प्रस्फुटित होते जाते हैं। एक—एक शरीरस्थ शक्ति केंद्र या चक्र खुलते जाते हैं। ध्यान व्यक्ति के समक्ष एक नया जगत रख देता है। यह आत्म जगत है, साधक के अंतःस्थल की दुनिया है। अतः ध्यान वस्तुतः आत्मदर्शन का साधन है, भगवद्दर्शन का मार्ग है। ध्यान का फल है — आत्मज्ञान। यह अधिचेतना के भी परे है। उच्च मन के क्षेत्र को अवक्रमित कर विकासमान चेतना जब शुद्ध सत्ता के बीज कोष आत्मा के साथ तदाकार होती है, तब शुद्ध चैतन्य की अवस्था होती है। यहीं पहुंचकर मनुष्य अपनी केंद्रीय सत्ता से संपर्कित होता है, संलग्न होता है। इस प्रकार ध्यान का उद्देश्य है — मन के विभिन्न क्षेत्रों का आवागहन एवं पूर्ण उत्क्रमण। ध्यान मन को पकड़कर वश में करने की कला है, और मन के परे पहुंचा देने का माध्यम है।

''<u>ध्यान योगेन सम्पश्येदगति भस्मान्तरात्मनः</u>'' — ध्यान योग के द्वारा ही अंतरात्मा का स्पष्ट तौर पर साक्षात्कार होता है।

ध्यान का सबसे प्रमुख प्रयोजन और उपयोग तो यही है कि चित्तवृतियाँ विभिन्न विषयों से हटकर एक विषय पर केंद्रित हो जायें और बाकी तो विषय की स्वरूप भावना पर निर्भर है। वह भी संस्कारों से, सत्संग से अथवा उपदेश से ही हो सकता है, इसलिए समाधियोग में धारणा और ध्यान अनिवार्य अंग माने गए हैं। धारणा से भाव परिपक्व होता है और ध्यान से दृढ़ होता है — यही दोनों का भेद है। इसलिए ध्यान को एक योग ही कहा गया है। जो समाधि अवस्था का साधक है, उसे ही ध्यान समाधि कहते हैं। भक्ति के क्षेत्र में ध्यान समाधि ही सर्वस्व है, क्योंकि क्षण भर की ध्यान समाधि से अनंत योग समाधियों से बढ़कर आनंद मिलता है। 'भक्ति के क्षेत्र में ध्यान का अनिवार्य अंग स्मरण है, पुनः स्मरण है, क्योंकि स्मरण ही आसक्ति का मूल है।' **''ध्यायतो विषयमान् पुसः संगस्ते पूष जायते।''**

जैसे—जैसे आसक्ति बढ़ेगी, चित्तवृति में स्थिरता आती जाएगी और धीरे—धीरे ध्याता और ध्येय के बीच भेद का मान नहीं होगा। उस स्थिति में श्वास—प्रश्वास की गति मंद होते—होते स्वयं ही स्थिर हो जाएगी। इसी को भक्तजन भाव समाधि भी कहते हैं, जिसमं देहाभ्यास भी छूट जाता है।

स्थूल और सूक्ष्म ध्यान → ध्यान दो तरह का होता है — (1) स्थूल ध्यान और (2) सूक्ष्म ध्यान। जब ध्येय निराकार होता है, तब उसकी ध्यान प्रक्रिया सूक्ष्म होती है। इष्ट को मूर्त रूप में स्मरण करने की क्रिया स्थूल ध्यान है। मंत्र जप में प्रायः स्थूल ध्यान का ही सहारा लिया जाता है। क्योंकि मंत्र चैतन्य का देवता के रूप में मानवीकरण कर लेने पर आस्था सहज होती है, और दर्शन भी तद्नुरूप होता है। हर मंत्र को मानवी मूरत के रूप में कल्पित कर लिया जाता है। वर्ण ही मुख, नाक, कान, पैर, भुजायें आदि होती हैं। इष्ट की मूरत को गढ़ा जाता है, कल्पना से और तब उसी पर ध्यान जमाया जाता है। मंत्र चैतन्य उसी रूप में जागृत होता है। इस चैतन्य को शुद्ध चैतन्य रूप में भी जगाया जाता है। स्थूल ध्यान भी वस्तुतः अंत में सूक्ष्म ध्यान में ही परिवर्तित हो जाता है। यथाविधि निरंतर चित्त की वृत्तियों को इष्टदेव के विग्रह में लगाकर जप करते रहने से जातक के बुद्धि दर्पण के मल, विक्षेप, आवरण नष्ट हो जाने पर निर्मल और निश्चल चेतन प्रतिबिम्ब अपने प्रभव भगवद्रूप चित्तशक्ति में लय हो जाता है। यही शास्त्र का अंतिम ध्येय है — **'स्वरूप प्रतिष्ठा चित्तशक्तिरिति।'** जिस ज्ञान का हमें अनुभव होता है, वह सापेक्ष है। वह निरपेक्ष सत्य नहीं है। वह परम सत्य नहीं है। यह सीमित ज्ञान है, आंशिक ज्ञान है। संवेगो से भी ज्ञान मिलता है। यह भी ज्ञानाभ्यास है, असली ज्ञान नहीं है। बौद्धिकता एवं संवेग से परे भी एक ज्ञान है। यह ध्यान के द्वारा ही प्राप्त होता है। यह ज्ञान सत्य से अधिकाधिक निकट है। यह सूक्ष्म ज्ञान है। इसमें स्थिति

अपने पूर्णत्व का दर्शन ध्यान से होता है। जीवन के गूढ़तर तत्व ध्यान में ही हमारे सामने आते हैं। 'व्यक्ति का जो व्यक्तित्व समाज में परिलक्षित होता है, वह उसका व्यक्तित्व नहीं होता। जब व्यक्ति ध्यान द्वारा उस सूक्ष्म स्वरूप को पहचानने लगे, तब जाकर वह अपने असली व्यक्तित्व को समझ सकता है। उस सूक्ष्म रूप को ध्यान के द्वारा ही देखा जा सकता है।

सक्रिय और निष्क्रिय ध्यान : विभिन्न स्तर → ध्यान को सक्रिय और निष्क्रिय ध्यान के रूप में अलग–अलग माना जा सकता है। जब हम चलते–फिरते, उठते–बैठते, सतत् स्मरण करने लगें, मंत्र चैतन्य से हर घड़ी ओत–प्रोत रहें, तो यह सक्रिय ध्यान है। हमारी हर क्रिया ही भगवद् अप्रित हो जाती है, और पूरी दक्षता, क्षमता एवं तन्मयता से हम उस काम को पूरा करते हैं। सक्रिय ध्यान तक पहुंचने के लिए निि क्रय ध्यान का अभ्यास किया जाता है। निष्क्रिय ध्यान में एक आसन पर बैठकर ध्यान का अभ्यास किया जाता है। उद्देश्य है – चंचल मन को एक बिंदु पर केंद्रित करना। ध्येय कोई भी वस्तु, विषय या सद्‌गुरू हो सकते हैं। स्वयं साधक भी ध्येय हो सकता है। लेकिन कितना अच्छा हो कि ईश्वर को ही ध्येय बनाया जाए। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है –

प्रायः ध्येय के रूप में साधक अपने इष्टदेव को ही रखते हैं। **'यथा भिमतध्यानाद्वा'** जो अभिमत हो, प्रिय हो, वही ध्यान के लिए आलम्बन हो सकता है। स्वामी सत्यानंद सरस्वती ने लिखा है; इसे दक्षता के विभिन्न स्तरों में बांटा जा सकता है –

1. किसी वस्तु पर ध्यान केंद्रित करना, इससे मन शांत होता है और अंतमुर्खता आती है।
2. निम्न मन में विचरण के पश्चात् चेतना के क्षेत्र में अवगाहन प्रारंभ होता है। यहीं से वास्तविक ज्ञान की शुरूआत होती है। ज्ञान तथा शक्ति के अनंत कोश अनायास ही दिखने लगते हैं। फलस्वरूप हमारी सत्ता विश्व–व्यवस्था के साथ एकात्म होने लगती है।
3. प्रथम स्तर में सफलता के पश्चात् स्वतः ही मन के अवचेतन क्षेत्र से विचार ग्रंथियों, दृश्यों और स्मृतियों की बाढ़ सी आ जाती है। यही समय है, जब हम अपने व्यक्तित्व का परीक्षण करें और दुर्गुणों को निकाल फेंके।
4. तन के अतिक्रमणान्तर साधक सर्वोच्च चेतना के साथ ऐक्य स्थापित कर आत्मदर्शन के लक्ष्य पर पहुंचता है।

निष्क्रिय ध्यान के फलस्वरूप सक्रिय ध्यान स्वतः सफल हो जाता है। जितना ही अधिक उसमें सतत ध्यानावस्थित रहने की क्षमता बढ़ेगी, यह मनुष्य को कर्मशीलन में अधिक निपुणता और अधिक समस्वरता प्रदान करेगा। इन सभी स्तरों को मंत्र साधक ध्यान के क्रम में अवक्रमित करता है।

मंत्र जाप की सतत क्रिया के बाद उसे मनश्चेतना में एक स्पन्दन उत्पन्न हो जाता है, जो मन की चंचलता को घटा देता है। मन की चंचलता जैसे ही घटती है, वैसे ही वह भीतर की ओर सहज प्रयास से ही मुड़ जाता है। भीतर की ओर मुड़ने से जैसे ही साधक कुछ गहराई में उतरता है, उसे नाना प्रकार की डरावनी आकृतियाँ नजर आने लगती हैं, रंग दिखते हैं। ये सभी मन की वासनाओं एवं वृतियो के ही रू हैं। इनसे डरना व्यर्थ है। हमारा म नही हमारे सामने निरावृत होता है। उसे तटस्थ भाव से देखना चाहिए। बिना किसी भय के, बिना किसी घबराहट के अपनी ही कुरूपताओं का सामना करना चाहिए। अतः मंत्र साधना करने वाले को दृढ़ संकल्प का व्यक्ति होना चाहिए।

मंत्र, मंत्रशक्ति एवं गुरू में दृढ़ आस्था रहने पर संकल्प में भी दृढ़ता आती है। निर्भय होना मंत्र साधना के लिए परम आवश्यक है। भयानक आकृतियों को सहसा मूर्त देखकर यदा–कदा कमजोर किस्म के साधक विक्षिप्त भी हो जाते हैं। खासकर यह भय निकृ ट मंत्रों की साधना एवं मंत्र जप करते समय होती है। ध्यान के समय प्रायः मानसिक विकृतियाँ खतरनाक रूप में सामने नहीं आती हैं। हाँ, उनकी मनोवृत्तियों के अनुसार विभत्सता अवश्य प्रत्यक्ष होती है।

मंत्र—साधक ध्यान के उपर्युक्त चारों स्तरों से धीरे—धीरे गुजरता है और अंत में उसे मंत्र के इ ट के दर्शन होते हैं। अतः यह प्रकट हो जाता है कि मंत्र ज पके साथ ध्यान की संलग्नता मंत्र—सिद्धि के लिए अति आवश्यक है।

<u>ध्यान न तो निद्रा है, न सम्मोहन</u> :→ साधक को इस बात का भी ख्याल रखना चाहिए कि मंत्र जप करते करते जैसे ही एकाग्रता बढ़े, एकांत बढ़े, आलस्यवश वह तंद्रा के बीच नहीं फंस जाए। नींद में भी जाप छूट जाता है। ध्यान में तो छूट ही जाएगा। अतः निद्रा को भ्रमवश ध्यान नहीं मान लेना चाहिए। ध्यान न तो नींद है, न सम्मोहन। यह इनसे परे एक स्वस्थ स्थिति है, जिसमें मनुष्य अपने अंदर चल रहे द्वन्द्वों, तनावों आदि के प्रति सजग होकर उन्हें समय रहते दूर करने का अवसर पा जाता है। ध्यान में पूरी सजगता रहनी चाहिए।

<u>ध्यान से लाभ</u> : →

1. ध्यान से मन स्थिर होता है, और एक ही विषय वृत्ति या वस्तु में संलग्न होने का अभ्यस्त हो जाता है।
2. मन की शक्ति केंद्रित होने से असीम हो जाती है।
3. मन के विकार नष्ट होते हैं, और चित्त पवित्र हो जाता है। पवित्र चित्त ही मंत्र भूमि है। उसी में इष्ट का अवतरण होता हे।
4. वर्तमान स्थिति झेलने के लिए मनुष्य को फौलादी मस्तिष्क चाहिए। ध्यान से बुद्धि एवं मेधा तीव्र होती है, तथा अपना विश्लेषक मन स्वयं हो जाता है। इससे विकृतियाँ मिटती हैं और मनुष्य में मानवीय गुणों का विकास होता है।
5. मन की अशांति नष्ट हो जाती है, और परमशान्ति का अनुभव होता है। ध्यान व्यर्थ के तनावों, चिंताओं एवं संतापों से छुटकारा पाने का सर्वोत्तम साधन है।
6. इससे अचेतन मन की आंतरिक क्रियाओं का विस्तृत परिचय मिलता है, और हमें भ्रांतियों से बचने का मौका मिलता है।
7. ध्यान से अनेक बिमारियाँ दूर की जा सकती हैं, तथा अपूर्व स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया जा सकता है।
8. ध्यान से ओज शक्ति तथा कांति बढ़ती है।
9. मन का निरोध होता है, और हम सहज ही, उच्चतम स्थिति में पहुंचने का मार्ग पकड़ सकते हैं।
10. इससे शरीर, प्राण और मन का संयम प्राप्त होता है, जिससे सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और मनुष्य अलौकिक शक्तियों का स्वामि बन जाता है।
11. जहाँ ध्यान है, वहीं समाधि है। जहाँ ध्यान है, वहीं मंत्र के देवता निवास करते हैं।
12. ध्यान के सिद्ध होने से हमें लौकिक, पारलौकिक तथा आध्यात्मिक संपदायें प्राप्त होती हैं।
13. ध्यान के द्वारा हम मंत्र चैतन्य या विशुद्ध चैतन्य को अपने हृदय में ही देखते हैं। इससे हमारी स्वरूपावस्थिति हो जाती है।
14. ध्यान ही वह प्रबल माध्यम है, जिससे भगवान की भक्ति के सभी मार्ग स्वतः खुल जाते हैं।

ध्यान की प्रगाढ़ता, प्राणायाम और मंत्र जप तीनों को नियमित करने का निर्देश

श्रीमद्भगवदगीता में लिखा गया है —

अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृतं ब्रह्माक्षर परं। मनोयच्छेज्जित श्वासो ब्रह्मबीज मा विस्मरन्।।

ध्यान पथ के विघ्न :—

शास्त्रानुसार ध्यान के मार्ग पर तीन प्रकार के अवरोध उत्पन्न होते हैं — (i) मल (ii) आवरण और (iii) विक्षेप। इन बाधाओं को जप साधना के अखण्ड प्रयास और सचेतनता से हटाया जा सकता है। जप—ध्यान के पूर्व शुद्ध मन से प्रार्थना करने से भी इन विघ्नों पर विजय प्राप्त करने के लिए पर्याप्त आत्मशक्ति प्राप्त होती है। बार—बार संकल्प को दुहराना चाहिए और अपने तथा मंत्र में पूण्र श्रद्धा—आस्था और विश्वास रखना चाहिए। चित्त की एकाग्रता में बल प्रयोग की जरूरत नहीं होती है। पूर्णतः विश्रामपूर्ण स्थिति में सहज रूप से अपने इष्ट मंत्र का अखंड, अबाध जप और करना चाहिए।

ध्यानाभ्यास एवं जप :—

ध्यानाभ्यास का सर्वोत्तम समय प्रातः काल का ब्रह्म मूहुर्त है। सूर्योदय के दो घंटा पहले बिछावन छोड़ना चाहिए। गुरु एवं इष्ट का स्मरण करके उन्हें प्रणाम निवेदित करने के बाद नित्यकर्म से मुक्त होकर स्नान करना चाहिए। वैसे ध्यान मध्याह्न और संध्या काल में भी किया जा सकता है। ध्यान में बैठने के पूर्व जलपान नहीं करना चाहिए। बिना कुछ खाए—पीए ध्यान पर बैठना चाहिए। भोजन सात्विक और अल्प हो। मादक द्रव्य, मांस—मछली, गरम मसाले तथा उत्तेजक पदार्थ वर्जित हैं।

छल, कपट, झूठ, क्रोध, भय, शोक से मन को दूर रखना चाहिए, जिससे उसकी चंचलता घटने लगे। ध्यानाभ्यास के पूर्व संसार को पीछे छोड़ आने की बात को ही अनुभूत करना आवश्यक है, ताकि मस्तिष्क पर व्यर्थ को तनावों का भार नहीं हो। कुछ देर के लिए महसूस करना चाहिए, कि आपके सामने न तो संसार है, न संसार की समस्यायें, न संसार की वस्तुयें और न संसार के प्रलोभन।

यह महसूस करना चाहिए कि हम बिल्कुल अलग—थलग विश्व प्रेम में रंगे एक निर्द्वन्द्व शुद्धात्मा हैं और बार—बार मन में यह संकल्प दुहराना चाहिए कि हमें प्रगाढ़ ध्यान में चल जाना है, भगवत्कृपा प्राप्त करनी है, भव सागर से पार उतर जाना है, अपने आंतरिक चैतन्य को परमचैतन्य से जोड़कर असीम बन जाना है। यह संकल्प संकल्पकर्ता के ध्यान में सहायक होगा।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने लिखा है — **'धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अंतर्यामी व्यापक परमेश्वर हैं, उनके प्रकाश और आनंद में अत्यंत विचार प्रेम तथा भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। उस समय ईश्वर का छोड़कर किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना चाहिए, किंतु उसी अंतर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना चाहिए। उसी का नाम ध्यान है।'** ध्यान में ध्याता को ध्येय या आलम्ब परमेश्वर को तथा उनकी परम सत्ता को ही रखना चाहिए। वैसे योगीराज देवराहा बाबा के अनुसार प्रारंभिक अवस्था में ध्यान की एकाग्रता बढ़ाने के लिए गुरू को, किसी प्रिय वस्तु को या साधक स्वयं को भी ध्यान का केंद्र बना सकता है। धीरे—धीरे ये प्रारंभिक आलम्बन या तो भगवदाकार हो जायेंगे, भगवद्स्वरूप हो जायेंगे या छूट जायेंगे।

मन की चंचलता घटे, इसके लिए सावधानी बेहतर होती हे। मंत्रों के साधक को मंत्र देवता को ध्येय बनाना पड़ता है। वह मंत्र जप के साथ प्राणायाम का संयोग कर नाड़ी शोधन करता है, फिर धीरे—धीरे मंत्र ध्वनि में ही मन को लय करने का अभ्यास करता है। बार—बार तरंगित होती मंत्र ध्वनि अपने आलोड़न से बाह्य चेतना को उसी प्रकार थपकी देकर सुला देती हैं, जिस प्रकार छोटे बच्चों को लोरी की धुन पर थपकी देकर मातायें सुला देती हैं। जैसे ही मन का संबंध बाहरी दुनिया से कटता है, वह अंतर्मुखी हो जाता है, और बाह्य चेतना के सुसुप्त होते ही अंतर्चेतना सक्रिय हो उठती है। अतश्चेतना ही प्रतिबिम्बित होकर नाना प्रकार की ध्वनियों एवं रंगों का सृजन करती हैं, जो धीरे—धीरे तिरोहित हो जाते हैं। इससे संस्कार परिशुद्ध होते हैं, और अंत में शुद्ध चित्त में मंत्र चैतन्य सजीव हो उठते हैं।

एक बात स्मरण योग्य है कि ध्यान करने के लिए दिमाग पर जोर नहीं डालना चाहिए। तनाव या दवाब की कोई जरूरत नहीं पड़ती। रीर के किसी अंग में अनावश्यक तनाव का रहना ठीक नहीं होता। शरीर और मन दोनों को सहज तथा तनाव रहित रहना उचित है। जरूरत है, स्वाभाविक एकाग्रता की, तनाव रहित जागरूकता की। हमें न तो विचारों से संघर्ष करना है, न उन्हें दबाना है। बस तटस्थ भाव से देखना है। शीघ्रता वर्जित है। सब कुछ समय पर ही ठीक होता है —

''शनैः कन्था शनैः पन्था शनैः पर्वत लंघनम्। शनैः भुक्तिः शनैःर्मुक्तिः शनैःर्विद्या शनैर्तपः।।''

अर्थात् — गुदड़ी धीरे—धीरे ही सीना चाहिए। मार्ग धीरे—धीरे चलना चाहिए। पर्वत पर धीरे—धीरे चढ़ना चाहिए। भोजन धीरे—धीरे करना चाहिए। मुक्ति का साधन धीरे—धीरे करना चाहिए। विद्या धीरे—धीरे ही पढ़नी चाहिए और तप धीरे—धीरे ही आगे बढ़ाना चाहिए।

जप और ध्यान का क्रम :→ देवराहा बाबा का कथन है – जप और ईश्वर भावना रूप ध्यान दोनों का एक काल में होना नहीं हो सकता, तथापि भावना रूप ध्यान से पूर्व और प्श्चात् जप करने का क्रम होना चाहिए। अर्थात् जप–ध्यान–जप इस क्रम में साधक को अग्रसर होना चाहिए। जप जैसे जैसे प्रगाढ़ होगा, तन्मयता उत्पन्न होगी, जिससे ध्यान सहज एवं स्वाभाविक तौर पर लगने लगेगा।

ध्यानाभ्यास कैसे करें :→

ध्यान का अभ्यास कैसे करें, इसके लिए योगीराज देवराहा बाबा का उपदेश स्मरणीय है –

1. नाम और नामी की अभिन्नता के कारण, नाम साधना से ध्यान का अभ्यास स्वयं ही हो जाता है। नाम साधना (मंत्र जाप) से नामी (इष्ट) के रूवरूप पर ध्यान जमने लगता है। रूवरूप वृति परिपक्व होने पर साधक फिर नाम पर ही लौट आता है, क्योंकि ध्यान की परिपक्वता में केवल ध्वनि ही अवशिष्ट रह जाती है।
2. ध्यान के अभ्यास में चित्त की एकाग्रता ही साध्य है। इसलिए यथा शक्ति चित्त को शरीर से अलग रखने का अभ्यास करना चाहिए, अर्थात न तो शरीर की आवश्यक्ताओं की ओर ध्यान देना चाहिए और न ही शरीर का विशेष साधने की ओर। दोनों ही अवस्थाओं में चित्त को शरीर में लगाना होता है। चित्त की वृति अनवच्छिन्न तैलधारा के समान ध्येय में लगी रहेगी, तो शरीर से वह स्वयं विरत हो जाएगी और अनायास ही केवली कुम्भक की सिद्धि हो जाएगी।
3. शरीर की क्रिया को रोक देना ही तो आसन और प्राणायाम की सिद्धि है। – वह भक्तों का क्रियायोग है। इसी प्रकार जब सब कामनाओं को केंद्र इष्ट अथवा ध्येय हो जाएगा, तो धारणा और ध्यान की सिद्धि हो जाएगी।
4. इच्छा और क्रिया का नियंत्रण हो जाने पर केवल ज्ञान ही रह जाता है, जो भक्त के लिए भगवदाकार वृति स्वरूप ही है।

एक अनुभव सिद्ध विधि →

स्वामी आनंद सरस्वती ने ध्यानावस्थित होने की एक अनुभव सिद्ध विधि का मार्गदर्शन निम्न ढंग से किया है। महात्माजी की सिद्धियाँ ख्यात रही हैं और संकटापन्न भक्तों को उन्होंने नाना प्रकार से सहायता कर उनका कल्याण किया है। उन्हें समय और दूरी पर सिद्धि थी। वे माँ गायत्री के अनन्योपासक थे। स्वामि जी की बात यहाँ द्रष्टव्य है –

1. जप करते हुए जब आधा घंटा या एक घंटा व्यतीत हो जाए तो जप छोड़ देना चाहिए और भृकुटि में यह धारणा करना चाहिए कि यहाँ दीपशिखावत् या चंद्रवत कोई ज्योति है।
2. बार–बार यह धारणा करने पर कुछ समय पश्चात् दिन, सप्ताह या महीनों बाद यह ज्योति अंदर की आँखों में दिखाई देने लगती है। समय कितना लगता है, यह तो अपने चित्त की अवस्था पर निर्भर करता है। जितनी अधिक निर्मलता होगी, उतनी ही ीघ्रता से यह ज्योति दिखाई देने लगेगी।
3. कुछ साधकों को ज्योति दिखाई नहीं देती, और उसके स्थान पर भृकुटि में खिंचावट सी, सनसनाहट सी प्रतीत होने लगती है। यह चिन्ह भी अच्छा है। इससे यह जान लेना चाहिए कि सूक्ष्म प्राण की गति वहाँ होने लगी है और ज्यों–ज्यों भृकुटि की विशेष नाड़ी ध्यान से शुद्ध होती जाएगी, यह सूक्ष्म प्राण ललाट चक्र और फिर ब्रह्मरंध्र में चला जाएगा। सूक्ष्म प्राण की गति के साथ चित्त भी वहीं बंध जाएगा।
4. इस प्रकार कम से कम एक घंटा अवश्य धारणा ध्यान कर लेना चाहिए। यदि अधिक समय दिया जा सके तो लाभ अधिक होगा।
5. निरंतर ध्यानावस्थित होने का अभ्यास करने से और ज्योति अथवा सनसनाहट का अनुभव करने से बुद्धि की मलीनता दूर होने लगती है। ज्योति जितनी ही शुभ्र, अथवा सनसनाहट जितनी ही तीव्र होती जाएगी, निर्मलता, पवित्रता भी उतनी ही बढ़ती जाएगी।

इस प्रकार ध्यान का अभ्यास नित्य करना पड़ता है। मंत्र जाप के साथ ध्यान अनिवार्य है। चाहे ध्यान योग हो, राजयोग हो या मंत्र योग, ध्यान ही सिद्धि का द्वार खोलता है।

ओंकार जपके साथ ध्यान की एक सरल विधि →

1. नेत्र बंद कर लेना चाहिए और मन को धीरे–धीरे शांत करें।
2. कुछ देर तक श्वास–प्रश्वास का निरीक्षण करना चाहिए।
3. पहले तीन बार प्लुत स्वर में **'ॐ कार'** की ध्वनि उत्पन्न करनी चाहिए और हर बार **'म'** की ध्वनि समाप्त होने पर अनुभव करनी चाहिए कि चारों तरफ से वह ध्वनि परावर्तित होकर हमारे श्रवण तंत्र तक पहुंच रही है और अपने आघात से सारे ारीर को झंकृत कर रही है। यह ध्वनि नाभी से उत्पन्न करने का अभ्यास करना चाहिए, कंठ से नहीं।
4. फिर कुछ देर तक 'ॐ' का मानसिक जप करना चाहिए। हर ध्वनि स्पष्ट हो, और उसकी तरंगों को भीतर ही भीतर हर ओर विस्तृत होता हुआ अनुभव करना चाहिए। अनुभव करें कि हमारा मन उस अथाह ध्वनि तरंग में बह रहा है, उसके कणों से सिक्त हो रहा है। 'ॐ' ध्वनि की तरंगें आपके पूरे मन प्राण को आप्लावित कर रही है।
5. कल्पना करना चाहिए कि दूर–दूर तक नीलगगन का विस्तार है। नीला–नीला। और कहीं कुछ नहीं है। सर्वत्र नीलिमा का ही विस्तार है। वह सागर की तरह चतुर्दिक फैला हुआ है।
6. भावना करना चाहिए कि उस नीले गगन को चीरते हुए एक विस्तृत ज्योर्तिमण्डल उदित हो रहा है, जिसके मध्य में कोटि–कोटि सूर्यों के समान चमक लिए 'ॐ' कार विराजमान है।
7. अनुभव करना चाहिए कि ओंकार से अनंत किरणें विकीर्ण हो रही हैं, और समूचे आकाश में फैल रही हैं। 'ॐ' की दिव्य किरणें आपके शरीर पर, शरीर के भीतर अंतःकरण एवं मन पर पड़ रही हैं। मन बड़ा ही शांत महसूस कर रहा है। इस ज्योति वर्षा में स्नान कर अंग–प्रत्यंग स्वच्छ और पवित्र बन रहा है, तथा मन के सभी ताप, मल विक्षेप और दुगुर्ण भस्म हो रहे हैं।
8. ध्यान और जप दोनों साथ–साथ कीजिए। जैसे–जैसे ध्यान की एकाग्रता बढ़ती जाएगी, **(इष्ट)** का स्वरूप स्पष्ट होकर विलम्ब तक धारण में बना रहने लगेगा और वैसे–वैसे जप का क्रम मंद होता जाएगा – साँसों की गति मंदतर होती जाएगी।
9. जब ध्यान में पूरी तन्मयता आ जाती है, तो जप स्वयं ही छूट जाता है। केवल ध्यान ही शेष रह जाता है। यह ध्यान की परिपक्वता है, और इसके लिए लंबे समय तक निरंतर अभ्यास की आवश्यकता होती है।
10. जब ध्यान जमने लगता है, तो साधक का ध्यान उस कल्पित ज्योतिर्मय मण्डल तक ही सीमित नहीं रह जाता, वरन् वह एक अचिन्त्य ज्योतिर्मय जगत अंतः जगत में प्रवेश कर जाता है।
11. इसके बाद साधक को अतीन्द्रिय पदार्थों की अनुभूति होने लगती है, और साकार ध्यान से निराकार ध्यान की ओर साधक अग्रसर होता है।

ध्यान में अभ्यास :→ श्री स्वामि ज्योतिर्मयानंद जी ने स्थूल और सूक्ष्म ध्यान के बारे में अनुभवजन्य निर्देश देते हुए लिखा है –

1. किसी आरामदायक आसन पर बैठ जाइये, या जिस किसी विशेष आसन पर ध्यान करते हैं, उस पर बैठ जाइए।
2. अपने मन में किसी आकर्षक प्राकृतिक छटा का चित्र उपस्थित कीजिए। उदाहरण के लिए हमें हिमालय की किसी सुंदर घाटी की कल्पना करनी चाहिए। अपनी कल्पना में पर्वत की ऊँची–ऊँची चोटियों को देखिये, उनके सबसे ऊपरी सतह पर धवल हिमाच्छादित सुंदरता को निहारिये। हरे जंगलों के बीच प्रवाहित हो रही सरिता का मानसिक अवलोकन करना चाहिए।
3. मानसिक तौर पर आप अपने परिवेश और शरीर से परे होकर, स्वयं को हिमालय की इसी सुंदर घाटियों में खो दीजिए। हवा की ताजगी, वातावरण की पवित्रता और गंभीरता, हरी घाटियों की मनोहारिता और प्रवाहित

हो रही सरिता की कलकलाहट का अनुभव कीजिए। अपनी सभी इंद्रियों को क्रियाशील कर उस दृश्य के सभी अनुभवों को ग्रहण करने दीजिए। जंगली पुष्पों के परिमल की सुगंधित वायु का आनंद तथा पर्वतों की चोटियों पर भ्रमण कीजिए।

अपने मन की सुग्राहकता से निर्देशित ध्यान में निम्नलिखित अभ्यास कीजिए।

4. जब हमारा मन अच्छी तरह तनाव रहित और विश्राम की अवस्था में आ जाए, तो अपने मन को दोनों भौहों के बीच (आज्ञा चक्र) एकाग्रित कीजिए। अपने आज्ञा–चक्र से होकर स्वर्णिम बादलों की घटाओं को अपने मस्तिष्क में प्रवेश होते देखना चाहिए। अनुभव करना चाहिए कि हमारा मन मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र (Nurvous System) इन बादलों से हुई शक्ति और शांति की कोमल फुहारों से विश्राम और स्फूर्ति प्राप्त कर रहे हैं। स्फूर्तिदायक प्रवाह के रोमांच को अपने मस्तिष्क से पैर तक प्रसारित होते अनुभव करना चाहिए।
5. इसके पश्चात् अनुभव करें कि हम एक पर्वत की चोटी पर बैठे हुए घाटी की विस्तृत छटा निहार रहे हैं। अपने समक्ष आप बादलों के समूह के मिलते–बिखरते आवरण से प्रकृति के मनोहर दृश्यों का आनंद ले रहे हैं। प्रकृति की सुंदरता से एकाकार होना चाहिए, मन को विस्तृत करना चाहिए और तंत्रिकातंत्र की परिसीमा से परे होकर, दैनिक जीवन की स्थूल वास्तविकताओं से ऊपर होना चाहिए।
6. अब आत्मा की सुंदरता पर ध्यान करना चाहिए। प्राकृतिक सुंदरता आत्मा की सुंदरता की ही एक अभिव्यक्ति है। विस्तृत आकाश की नीलिमा, अनंत सागर की भव्यता, झील की प्रत्येक तरंगों की पूर्णिमा की चांदनी में मनोहारिता और मानव मन की कल्पना तथा दृष्टि में जो कुछ भी सुंदर और आकर्षक है, वह वास्तव में आत्मा से ही उत्पन्न होता है।
7. मैं वही हूँ। मैं सभी सुंदरताओं और सामंजस्य का उद्‌गम् हूँ। इस प्रकार ध्यान करते हुए आपको अपने मन की गहराइयों में विस्तरण, निरभ्रता और आनंद का भाव लाना चाहिए।
8. आप धीरे–धीरे अपने ध्यान को स्थूल से भावात्मक रू॰ में परिवर्तित कीजिए। फिर भावात्मक ध्यान से ऊपर उठ, आपकों वेदांत में वर्णित आत्मा का ध्यान करना चाहिए।
9. मन की प्रशान्तावस्था में अपनी मूल–भूत सत्ता – **'मैं हूँ'** का अनुभव कीजिए। इस अनुभव को निम्नांकित धारणाओं के साथ नहीं मिलाइये, जैसे – मैं दुःखी या सुखी हूँ। मैं सफल या असफल हूँ। मुझे इन कार्यों को कर लेना चाहिए। मुझे अमुक कार्य कर लेना चाहिए। मुझे सद्‌गुणों के रास्ते का अनुसरण करना चाहिए ......। इसके बदले सहज और सार्वभौमिक **'मैं हूँ'** का अनुभव कीजिए। इस भाव से आत्मा की सार्वभौमिक चेतना की अनुभूति करने में सहायता मिलेगी। आप अहंकार रहित आत्मा तक पहुँच सकेंगे।
10. ध्यान कीजिए कि 'मैं शरीर, मन और इंद्रियों से परे हूँ। मैं अनंत अमर और शाश्वत आत्मा हूँ। मैं सत्, चित्त और आनंदस्वरूप हूँ।'
11. अपने श्वास के साथ **'सोऽहम्'** मंत्र को संयुक्त कीजिए। जैसे–जैसे आप श्वास लेते हैं, उसके साथ **'सो'** और श्वास छोड़ते समय **'हम्'** की ध्वनि की कल्पना कीजिए। **'सो'** का अर्थ है मन, इंद्रियों, और अहंकार से परे **'वह'** और **'हम'** का सहज अर्थ **'मैं हूँ।'**

इस प्रकार आप अपनी प्रत्येक सांस के साथ सार्वभौमिक आत्मा ;परमात्माद्ध के साथ अपनी अंतरात्मा की एकता की अभिपुष्टि करते हैं। आप जैसे ही श्वास लेना आरंभ करते हैं, वैसे ही (सो के साथ) सार्वभौमिक विस्तार को प्रकट करते हैं, तथा श्वास छोड़ते (हम के साथ) ही इसे अपनी चेतना में अंतनिर्हित करते हैं।

ध्यान का अंत →

1. अब आप अपने ध्यान का अंत एक दीर्घ **'ॐ'** की ध्वनि के साथ कीजिए।
2. **'ॐ'** का उच्चारण कई बार कीजिए तथा इसके स्पन्दित ध्वनि को मेरूदण्ड में प्रवाहित होने का अनुभव कीजिए। ध्वनि मधुर, अंतर्मुखी, गुंजायमान तथा सतत् हो।
3. धीरे–धीरे **'ॐ'** की ध्वनि को तेज और बहिर्मुखी कीजिए। अनुभव करना चाहिए कि **'ॐ'** की गूंज के साथ–साथ आप भी क्षितिज से भी परे विस्तृत हुए जा रहे हैं।

4. कुछ समय तक मंत्र जप करना चाहिए।
5. अपने तथा संसार के कल्याणार्थ मौन प्रार्थना के साथ अपने ध्यान का अंत कीजिए।
6. अपने दैनिक जीवन की क्रियाशीलता में संलग्न रहने के बाद भी ध्यानावस्था की प्रशान्ति और मानसिक निरभ्रता को बनाए रखने का प्रयास कीजिए। हिमालय से निरंतर प्रवाहित रजत—सरिता की धारा की तरह इस भावना की एकलयता बनाए रखिए।
7. सभी परिस्थितियों में मानसिक संतुलन बनाए रखिये तथा क्रोध, घृणा, ई र्या, भय और अहंकार के ऋणात्मक भावों के बदले सहनशीलता, प्रेम, उदारता, सहानुभूति, निर्भयता और विनम्रता के धनात्मक भाव लाइये।

इस प्रकार अधिकाधिक विस्तरण का अनुभव करते हुए आप अपने महान लक्ष्य आत्म—साक्षात्कार तक पहुंच सकते हैं।

—: जप और ध्यान के लिए याद रखें :—

1. यदि इंद्रिय भोग अनियंत्रित ही रखना है, तो साधना के क्षेत्र में आने से क्या लाभ? क्रिया इच्छानुकूल नहीं बुद्धि के अनुसार होनी चाहिए। यह जीवन केवल इंद्रियों की तुष्टि के लिए नहीं है। यह ज्ञान के लिए, सद्भाव के लिए, प्रेम के लिए है। प्रेम ही जीवन है। लेकिन इस प्रेम में विषय—वासना का भाव न हो। यदि आप संयम नहीं करेंगे, तो पतन के मार्ग पर जायेंगे। इसके लिए उत्तम स्वभाव का अभ्यास करना पड़ता है।
2. एक बात याद रखें। यह वासना जो हमारे भीतर आयी है, वह अचानक नहीं आई है। कोटि—कोटि जन्मों के अभ्यास से बनी है — वासना। एक दिन में जाएगी भी नहीं। बिना बहुत दिनों के साधनाभ्यास के यह कभी शांत नहीं हो सकती।
   योग वशिष्ठ में कहा गया है — **जन्मकोटिसमभ्यस्ता राम संसारवासना। न चिराभ्यासयोगेन विनयं शाम्यति क्वचित।।**
   अतः चिरकाल तक साधनाभ्यास के लिए प्रस्तुत रहना होगा। यह काम शीघ्रता का नहीं है। हड़बड़ी करने से गड़बड़ी होगी। अभ्यास धीरे—धीरे होगा — **शनैर्मुक्तिः शनैर्विद्याः शनैर्तपः।**
3. **'त्व'** पदार्थ की साधना के लिए पूरी श्रद्धा, पूरी विधि और पूरा प्रयत्न चाहिए। उसे दीर्घकाल तक निरंतर सत्कार भाव से करना चाहिए। आत्मा की प्रधानता से जो साधन होता है, वह बिना पौरूष, बिना श्रद्धाभाव और बिना दीर्घकाल के सिद्ध नहीं होता।
4. एक साधना ईश्वर की तत् पदार्थ की प्रधानता से होता है। उसमें विधि—विधान एवं दीर्घकाल के अभ्यास की जरूरत नहीं है। यह ईश्वर के अनुग्रह पर अवलम्बित है। भगवान स्वयं भक्त का हाथ पकड़कर उठा लेते हैं, गोद में बैठा लेते हैं।
5. योगाभ्यास और मंत्र साधना **'त्वं'** पदार्थ की साधना है। इससे हमें भगवान को, मंत्र के ईष्ट देवता को पकड़ना पड़ता है। अतः इसमें पूरा प्रयास करना पड़ता है, निरंतर अभ्यास करना पड़ता है। यह दीर्घकालीन साधना है।
6. योगीराज देवराहा बाबा ध्यान के लिए **'शाम्भवी मुद्रा'** का उपदेश करते हैं। श्री उड़िया बाबा जी महाराज का भी यही निर्देश था —
   'अंतर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिनिर्मेषोन्मेषवर्जिता। सा मुद्रा शाम्भवी नाम सर्वतान्त्रेषुगोपिता।।'
   भीतर हृदय में लक्ष्य (इष्ट) और दृष्टि बाहर हैं, किंतु पलकें उठती—गिरती नहीं हैं। पलकें स्थिर हैं। यही शाम्भवी मुद्रा है। यह सभी तंत्रों में गोपनीय है।
7. ध्यान का अर्थ हृदय में कुछ बसाना नहीं है। बाहर का जो कुछ भी वहाँ बस गया है, रम गया है, उसे निकाल फेंकना है। दर्पण पर धूल जम गई है, उसे स्वच्छ कर देना है।
8. ध्यान में बैठने पर शरीर में कहीं भी तनाव नहीं रहना चाहिए। अनावश्यक दवाब कहीं नहीं होना चाहिए। नेत्रों को दबाकर ध्यान नहीं होता। इससे आंखें दुखने लगेगी, सिर में दर्द हो जाएगा। बाहर के स्पर्शों को बाहर ही छोड़ देना है, उनकी ओर बिल्कुल देखना ही नहीं है — **स्पर्शान कृत्वा बहिर्बाह्यान्।'**

9. यदि हम राग–द्वेष का चक्कर नहीं चला रहे, पूरी शांति से बैठे हैं, तो हमारी सांस की गति मंद होगी। सांस नासिका के छिद्रों तक रहे। सांस कहाँ तक जा रही है, इसका ख्याल तक नहीं होता। प्राणापान को सम करना – यही अभ्यास होता है –

'प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।'

10. काम, क्रोधादि के आवेश में सांस तेज चलती है। इससे बचना पड़ता है। **'विगतेच्छाभय क्रोधः'** होकर बैठना पड़ता है, ध्यान में। न कोई इच्छा, न भय, न क्रोध। मन को रिक्त करके ही ध्यान पर बैठें तो अच्छा है, अन्यथा कोई लाभ नहीं होगा। मन को रिक्त करने का ही अभ्यास और साधन ध्यान है। निर्विषय होने का प्रयत्न करें। मन, बुद्धि, इंद्रियों को यथास्थान बैठा दें – उनसे कोई काम नहीं लें।

11. जब हम मौन हो जाते हैं, अंतर्मुख हो जाते हैं, तो भगवान बोलते हैं। ध्यान मौन होने की कला है, और भगवान की बात सुनने–समझने का माध्यम है। **'सुहृद सर्वभूतानां।'** भगवान हमारे हृदय में बैठकर बोलते हैं। हमारा ध्यान संसार की ओर लगा रहता है, हम बाहर के शोर में डूबे रहते हैं। अपनी वासनाओं की आवाज में ही रीझे रहते हैं। अतः भगवान की बात नहीं सुन पाते। हृदय वीणा से झंकार तो निकलती है, किंतु उसमें राम के शब्द हैं, या काम के – इसका निर्णय कैसे हो? ध्यान के द्वारा प्राप्त निर्मलता ही वह हंस है, जो नीर–क्षीर का विवेक करता है। बिना निष्काम हुए सच्चा ध्यान नहीं हो सकता। अतः हमें पहले अपनी कामनाओं को घटाना होगा। कामनायें घटती जायेंगी, वासनायें मिटती जायेंगी, तो ध्यान धीरे–धीरे लगने लगेगा।

12. हमें व्यवहार में युक्त बनने की चेष्टा करनी है। यही साधन है। हमारा बोलना–चालना, खाना–पीना, कमाना–खर्चना सब कुछ युक्ति–युक्त हो। इसका अभ्यास जैसे–जैसे होगा, ध्यान की प्रगाढ़ता बढ़ती जाएगी।

13. मनुष्य को साधना स्वयं करना पड़ता है। कोई दूसरा आपके लिए साधना नहीं करेगा, ध्यान नहीं लगाएगा, गुरू भी नहीं। गुरू की कृपा शिष्य अपनी योग्यता के अनुसार ग्रहण करते हैं। गुरू मार्ग दिखा देंगे। चलना तो हमारा कार्य है। ध्यान लगे, इसका प्रयास हमें ही करना होगा।

14. जब हम भजन करने बैठें, मंत्र जाप करने बैठें, ध्यान लगाने बैठें तो आसन से उठकर क्या करना है, इसका संकल्प मन में न लायें। जप के बाद यह करना है, वह करना है – यह सोचकर आसन पर बैठते ही विक्षेप शुरू हो जाएगा और मन कदापि एकाग्र नहीं हो सकता। ऐसा संकल्प नहीं करने को योग–दर्शन में प्रयत्न शैथिल्य कहा जाता है। मन में संकल्प लेकर बैठें तो वृति निरोध कैसे होगा? इसलिए सकाम मंत्रानुष्ठान में संकल्प को रेखाकिंत किया जाता है, ताकि मन की समग्र शक्ति उसी संकल्प में केंद्रित हो। भजन और मंत्र–जाप में प्रगाढ़ता के लिए प्रयत्न शैथिल्य जरूरी है।

15. **'संकल्प प्रभवान् कामान्।'** संकल्प से ही काम की उत्पत्ति होती है। इच्छायें पैदा होती हैं, राग–द्वेष चित्त को चंचल करते हैं। वासना की धारा शुभ और अशुभ दोनों मार्गों से बहती हैं। अतः पौरूष से, प्रयत्न से इसे शुभ मार्ग में लगाना चाहिए –

'शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहन्ती वासनासरित्। पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि।।

16. साधक को चाहिए कि अपने को स्थान, वस्तु, व्यक्ति या क्रिया के अधीन नहीं करें। अमुक स्थान पर बैठेंगे तभी ध्यान लगेगा – इस की भी अनिवार्यता नहीं होनी चाहिए। उत्तम यही है कि हम जब, जहाँ, जैसे हैं, वैसे ही ध्यान कर सकें। एक व्यक्ति ध्यान करते समय मिश्री की डली मुंह में रख लेते थे। एक दिन डली नहीं मिली तो ध्यान लगा ही नहीं। एक–दूसरे व्यक्ति ध्यान करते समय झूमते थे। मना किया गया तो वे स्थिर तो बैठ गए, किंतु ध्यान में आनंद नहीं आया। अतः पराधीनता नहीं होनी चाहिए।

17. साधन का मूलमंत्र भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में दे दिया है –
उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत। आत्मैव ह्ययात्मानो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।। – गीता, 6/5
स्वयं ही अपना उद्धार करें। स्वयं को गिराये नहीं, क्योंकि मनुष्य स्वयं अपना बंधु है, और स्वयं अपना शत्रु भी।

18. **नात्मानवसादयेत्।** अपने जीवन को अवसाद से नहीं भरें। अवसादन में तीन बातें हैं –
(i) अपने को विशीर्ण नहीं करें, बिखेरें नहीं, थोड़ा–थोड़ा में नहीं बांटें।

(ii) सद्भाव में त्रुटि न होनें दें, चिद्भाव में त्रुटि नहीं होने दें। इससे गमनागमन का अवसाद नहीं होगा।
(iii) अपने को दुःखी नहीं होने दें। प्रफुल्ल रहिए। प्रसन्न चित्त से साधन कीजिए। निराशा से बचे रहिए। देखिए विकार तो स्वतः हो जाते हैं, विकृति सहज होती है, किंतु संस्कार तो करना पड़ता है, परिमार्जन प्रयत्न साध्य होता है।

19. सुख में, दुःख में मन को संतुलित रखिये। विवाद को समभाव से ग्रहण करने की आदत डालिए। मान—अपमान में, चित्त की तुला को किसी ओर झुकने नहीं दीजिए।
20. जब हम विकार को दूर करके 'जितात्मा' बनेंगे, संस्कार को दूर करके 'प्रशांतात्मा' बनेंगे, तो अपने हृदय में पहले से ही विद्यमान परमात्मा से, अपने इष्ट से स्वतः साक्षात्कार हो जाएगा। हमारा सारा साधन मात्र विकारों और संस्कारों को मिटाने के लिए है, हटाने के लिए है। प्रगाढ़ ध्यान इसी काम को करता है।
21. गीता में भगवान का वचन है —
योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः। एकाकी यत्त चित्तात्मा निराशीर परिग्रहः।। —6/15
अर्थात् योगी एकांत में अकेले स्थित होकर, सब आशाओं ;इच्छाओंद्ध को त्यागकर, परिग्रह छोड़कर, मन—इंद्रियों को संयत करके अपने—आप से योग करें।
22. देखिए, ध्यान का अभ्यास सतत् होना चाहिए, प्रतिदिन होना चाहिए। बिना नागा किए। यह नहीं कि किसी दिन तो आठ घंटा आसन पर बैठें, और किसी दिन आधा घंटा भी नहीं। एकांत में बैठकर नियमित अभ्यास करें। न तो अति हो और न कम हो —समरूप अभ्यास चले।
23. **'आत्मानं युंजीत।'** अपने—आप से मिलें। एकांत में बैठकर आत्म—निरीक्षण करें, अपने अंदर झांकें, स्वयं को समझने—पहचानने की कोशिश करें।
24. **रहसि।** ध्यान एकांत में करें। जहाँ आपके सिवा कोई और न हो। व्यर्थ की बातचीत में समय काटने की संभावना न हो। अपने—आप भीतर ही भीतर बात करें।
25. **'स्थितः।'** — स्थित होकर, बैठकर ध्यान करें। चलते—चलते या लेटकर यह कार्य नहीं हो सकता है। आसीनः सम्भवात्। लेटने पर नींद आएगी, तंद्रा घेर लेगी, अतः बैठकर ही साधन—भजन का नियम है।
26. **एकाकी** — ध्यान एकांत में, मंत्र—जाप एकांत में करें। जहाँ आप अकेले हों, कोई अन्य आपकी मदद में न हो। कोई चाकर नहीं, कोई मित्र नहीं, कोई दुश्मन नहीं। न राग, न द्वेष, न सुख, न दुःख। यही सच्चा एकांत है। जहाँ आप बिल्कुल असहाय होकर इष्ट का भरोसा कर सकें, यही स्थान एकाकी है।
27. **यत्तचित्तात्मा** — जैसा चित्त वैसी आत्मा। चित्त को समस्त अंतःकरण को शुद्ध करके, निर्मल करके आत्मा सा स्वच्छ कर लेना ही ध्यान का प्रयोजन है। शरीर और मन दोनों को स्थिर करना चाहिए।
28. **निराशी** — कोई आशा नहीं, कोई इच्छा नहीं। यह चाहिए, वह चाहिए की रट छोड़कर ध्यान में बैठिए। कल की कोई कामना नहीं रखिए मन में। मन बिल्कुल खाली हो, इष्ट के लिए, मंत्र—चैतन्य के लिए।
29. **अपरिग्रह** — साधना के स्थल पर अपने निजी उपयोग की कोई वस्तु नहीं रखें। किसी भी वस्तु के प्रति आसक्ति नहीं होनी चाहिए। संसार के प्रति ममता बनी रहेगी, तो समता नहीं आएगी।
30. जब हम एकांत में अपने को दूसरों से, संसार से अपने संस्कारों से पृथक कर देते हैं, तब 'हर' मिलते हैं, 'हरि' मिलते हैं, इष्ट दर्शन देते हैं।

आसन : →

1. शुचौ देशे प्रतिष्ठाय स्थिरमासनमात्मनः। नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिन कुशोत्तरम्।। —गीता, 6/11
अर्थात् पवित्र आसन पर अपना आसन स्थिर रूप से स्थापित कीजिए। आसन न तो बहुत ऊँचा हो, और न बहुत नीचा। उसमें कुश के ऊपर मृगचर्म और उसके ऊपर वस्त्र बिछा हो।
2. अपने घर में ही एक पवित्र स्थान भजन—ध्यान के लिए बना लिजिए। जहाँ भोजन—शयन हो, वहाँ भजन—ध्यान नहीं करना चाहिए। जिस आसन पर सोते हों, उसी पर भजन नहीं करें। एक आसन, एक स्थान ऐसा निश्चित कर लें, जहाँ साधना ही करें, अन्य कुछ नहीं।

3. बार—बार के भजन से वह स्थान संस्कारित हो जाता है, जाग्रत हो जाता है, पवित्र हो जाता है। जब आप वहाँ बैठेंगे, तो संसार के विषय में नहीं सोचेंगे और आपके भजन—ध्यान में व्यवधान नहीं पड़ेगा।
4. **प्रतिष्ठाप्य** — आसन की भी प्रतिष्ठा होनी चाहिए, सम्मान होनी चाहिए। अपने उस आसन के प्रति पूरा आदर—भाव रखिए, उस पर श्रद्धा भाव से बैठिए।
5. **स्थिरासनम्** — आसन स्थिर होना चाहिए। कभी यहाँ, तो कभी वहाँ नहीं। मन को वहीं लगाइए। अन्यथा उसकी चंचलता ही बढ़ेगी। मन कहता है — आज तो ध्यान नहीं लगता। आज छोड़ दो, कल लगेगा।' यदि ऐसा विचार हुआ, तो यह कल कभी नहीं आएगा। यह मन की बहानेबाजी है, टाल—मटोल है। साधन में सदैव यही भाव रखें कि जो कल करना है, उसे आज करो। 'जो दोपहर को करना है, उसे दोपहर के पहले ही करो।' **श्वः कार्यमद्यकुर्वीत पूर्वाह्ने चापरह्निकम्।**
6. आसन निजी हो, अपना हो। दूसरों के आसन पर बैठकर ध्यान का और मंत्र जप नहीं करना चाहिए। 'आत्मनः' का यही आशय है। पलंग, आसन, वस्त्र, पत्नी, पुत्र, कमण्डलु — अपने ही पवित्र होते हैं।
7. आसन ऊँचा—नीचा नहीं होना चाहिए। सम होने पर ही मन में समता आएगी। अधिक ऊँचा होगा, तो गिरने का भय होगा। अधिक नीचा होने पर गंदे जल या कीटों का भय होगा।
8. **चैलाजिनकुशोतरम्** — नीचे कुश का आसन, उस पर मृगचर्म या ऊनी कपड़ा तथा रेशमी कपड़ा होना चाहिए, ताकि वह नरम रहे। बैठने पर नीचला भाग दबता है। दबने से उष्णता बढ़ती है। मंत्र—जप से शरीर में विद्युत ऊर्जा या चैतन्य ऊर्जा का प्रवाह होने लगता है। पृथ्वी और शरीर सजातीय है। जप और ध्यान से उत्पन्न ऊर्जा का विसर्जन पृथ्वी में नहीं हो जाए, इसके लिए कुशासन रखा जाता है। मृगचर्म पर शयन करना, बैठकर भोजन करना वर्जित है। मृगचर्म पर सर्प, बिच्छू, खटमल नहीं चलते हैं। इसके ऊपर से रेशमी वस्त्र बिछायें। इस आसन के नीचे कोई ऐसा आसन डालें, जैसे — चौकी, चबूतरा, मिट्टी या ईंट की वेदी जो बदला नहीं जा सके।
9. **'स्थिरसुखमासनम्'** — जिस आसन पर स्थिर एवं सुखपूर्वक बैठा जा सके, वही आसन है। देह में दर्द होने लगे, उसे आसन नहीं कहते।
10. बैठने के लिए सिद्धाश्रम श्रेष्ठ है। स्वस्तिकासन भी अच्छा है। स्वामि अखण्डानंद जी पद्मासन को ध्यान के लिए बहुत उपयुक्त नहीं मानते। यह दीर्घ काल में सिद्ध होता है। मंत्र साधना में सिद्धासन और सुखासन श्रेष्ठ है।
11. बैठने का अभ्यास धीरे—धीरे बढ़ायें। पहले सप्ताह में दस मिनट बैठें। बाद में हर सप्ताह दो मिनट बढ़ाते जाइए। एक महीने में बीस मिनट कर लिजिए। छः माह में पर्याप्त समय स्वतः बढ़ जाएगा।

शरीर का हिलना →

आसन पर बैठने पर यदि शरीर हिलता हो तो दो बातों पर ध्यान दें — (1) भजन से उठकर क्या करना है, यह संकल्प मन में नहीं लायें। प्रार्थना करें कि हे प्रभु! हम तो अब आपके जप—ध्यान में बैठ गए। तुम उठाओगे तो उठेंगे, लेकिन हमारा अब संसार में कोई ऐसा काम नहीं कि उसके लिए उठना आवश्यक हो। इस नाम 'प्रयत्न शैथिल्य है। (2) आपके हृदय में भगवान श्री शेषनाग के सिर पर शयन कर रहे हैं। शेषनाग की स्थिरता का ध्यान करें। इसका नाम है — **अनंत समापत्ति।** इससे आसन स्थिर हो जाएगा।

मन की एकाग्रता —

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यत्तचितेन्द्रियक्रियः। उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये।। —गीता 6/12

उस आसन पर बैठकर, चित्त और इंद्रियों की क्रियाओं को संयत करके मन को एकाग्र करके आत्म विशुद्धि के लिए योग कीजिए।

मन की एकाग्रता ही ध्यान का फल है। मन को एक ही विषय में लगायें। मन को एकाग्र करने के अनेक तरीके हैं —

1. काल क्षण—क्षण में बीत रहा है। प्रत्येक क्षण को मन में गिनते जाइये, तो मन एकाग्र हो जाएगा।

प्रस्तुति :— श्री अभिषेक कुमार, (मंत्र, तंत्र यंत्र विशेषज्ञ, महाविद्याओं के सिद्ध साधक एवं शक्ति सिद्धांत के व्याख्याता)
परमपूज्य गुरुदेव श्री निखिलेश्वरानंद जी महाराज के परम प्रिय शिष्य, शक्ति अनुसंधान केंद्र, मो0:— हजारी, नून का चौराहा, पटना सिटी.
Mob:- 9852208378, 9525719407. E-mail:- shaktianusandhankendra@gmail.com

2. सांस का बाहर–भीतर आना–जाना ध्यान से देखिये। प्रति मिनट में सांसों की संख्या गिनिए। मन एकाग्र हो जाएगा।
3. किसी एक वस्तु को ले लीजिए। उसी को मन में बार–बार आने दीजिए। कोई दूसरी वस्तु मन में नहीं आए। इससे मन एकाग्र हो जाएगा।
4. जो प्रत्यय शांत हो, वही उद्धित हो। जो गया, वही आया। **'शान्तोदितो तुल्य प्रत्ययौ।'** यदि ऐसा श्री राम, श्री कृष्ण, नारायण, शिव, गायत्री, भगवती या अन्य इष्ट देव के साथ भगवद् बुद्धि से कीजिए तो चित्त निर्मल होगा और मन एकाग्र हो जाएगा।
5. मन को भीतर तक जाने दीजिए। वहां अपने इष्ट की किसी लीला का ध्यान कीजिए। आपके ध्यान में श्री कृष्ण, श्रीकृष्ण के ध्यान में श्री राधा और श्री राधा के ध्यान में श्री कृष्ण। बार–बार ऐसा ही कीजिए। मन एकाग्र हो जाएगा। इसे सालम्ब योग कहते हैं – सहारा लेकर मन को एकाग्र करना।
6. सांस को नासिका छिद्र से नाभी तक आते–जाते देखिए। मन एकाग्र हो जाएगा।
7. कल्पना कीजिए कि बोलते समय मन में जो बैखरी वाणि में, जीभ में था, वह वहां से मध्यमा (हृदय) में गया। हृदय से पश्यन्ती (नाभी) में और वहां से मूलाधार (परावाणी) में समाहित हो रहा है। परा वाणी चिद्रूपा है। वहां ध्यान लग जाएगा।
8. मन को मूलाधर से स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा चक्र में होते हुए सहस्रार में ले जाइए। मन एकाग्र हो जाएगा।
9. किसी प्रिय वस्तु, व्यक्ति, गुरू या इष्ट के किसी रूप को बार–बार स्मरण कीजिए। मन एकाग्र हो जाएगा।

कैसे बैठें →

1. नेत्र को चाहे अमावस्या के समान पूरा बंद कर लें, या पूर्णिमा के सदृश पूरा खुला रखें, अथवा प्रतिपदा की भांति अर्द्धोन्मीलित रखें। ध्यान के समय नेत्रों की यही तीन स्थिति होती है, किंतु इनमें किसी भी प्रकार दृष्टि रखी जाए, बाहर के विषय इंद्रियों के द्वारा भीतर नहीं आने दें।
2. जो बताया जाता है, वह बिगड़ जाता है, चाहे वह ज्ञान हो, समाधि हो या ध्यान हो। जो भोगा जाता है, वह बांध लेता है। अपने स्वरूप में न कुछ करना है, न भोगना है। मन की प्रकाश किरणों को पकड़ना है। बाहर की आती–जाती छायाओं को ज्ञान का रंग नहीं मानिए।
3. जब आसन पर बैठ जायें, तब चित्त एवं इंद्रियों की क्रियाओं को उपराम हो जाने दें।
4. आसन पर ध्यान करते समय 'समं कायशिरोग्रीवं धारयान्नचलम्' ारीर, सिर और गर्दन को सीधा, समान और अचल रखें।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः। संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।

—— गीता, 6/13

5. प्रयत्न को दृढ़ रखिये और मन को जाग्रत रखिए, ताकि वह तंद्रा में नहीं जाए।
6. दृष्टि नाक के अग्रभाग पर रहे। अधखुली आंख रखनी हो, तो नासिकाग्र भ्रू–मध्य को मानना चाहिए। नेत्र बंद रखना हो, तो मुख की ओर नाक की जो नोक है, वहां चित्त लगावें। मन से देखें। पुतलियों के व्यायाम से पीड़ा होगी।
7. नासिकाग्र–प्रेक्षण का अर्थ है कि नासिका से आगे मत देखो, अर्थात् दृष्टि को नेत्र गोलक में ही सीमित कर दो। उसे बाहर मत जाने दो।
8. **दिशश्चानवलोकयन्।** दिशाओं को मत देखिये। ऊपर–नीचे, पूर्व–पश्चिम कहीं नजर नहीं दौड़ाइये। नेत्र को किसी ओर नहीं ले जाइए। मन को भ्रू–मध्य में बैठा दीजिए।

सावधानी बरतें :–

1. निर्भय होइये। राग–द्वेष या भूख की मनोवृति रखकर ध्यान नहीं होना चाहिए। भूखे–प्यासे ध्यान नहीं लगता। शरीर में दर्द नहीं हो, चित्त स्थिर हो, तब ध्यान लगता है।

2. साधना के समय शंका और दुविधा सबसे बड़ा भय है। अपने इष्ट के प्रति पूर्णतः आश्रित होइये।
3. मन में भोग चिंतन नहीं आए। इष्ट के अतिरिक्त कुछ भी नहीं आए। मन का संयम कीजिए।
4. नियत स्थान पर, नियत समय तक, नियत आसन पर, नियत आसन से बैठकर, नियत संख्या में, नियत इष्ट मंत्र का जाप करते हुए, नियत इष्ट स्वरूप के ध्यान का प्रयत्न करना चाहिए। यह साधक के लिए परम आवश्यक है। अवस्था विशेष में इनमें कुछ परिवर्तन आपत्तिजनक नहीं है। परंतु इनका ख्याल अवश्य रखें। ऐसा करने से ध्यान सुगमता से और शीघ्र फलप्रद होता है।
5. ध्यानाभ्यास तीन घंटों तक का अच्छा है। प्रातःकाल, संध्या समय और रात्रि में। प्रारंभ आधे घंटे से कर सकते हैं।
6. जबतक वृत्ति सर्वथा ध्येय के आकार की नहीं बने, शरीर का बोध बना रहे और सांसारिक स्फुरणायें मन में उठती रहें, तब तक इष्ट मंत्र का जाप करते रहिए और बारम्बार चित्त को ध्येय में लगाने की चेष्टा कीजिए। लय (नींद), विक्षेप, कषाय, रसास्वाद, आलस्य, प्रमाद, दम्भ आदि दोषों से बचते रहने का प्रयास करते रहिए। यह विधि नियमित ध्यान के लिए है। यों तो साधक को हर समय सभी काम करते हुए भी इष्ट का चिंतन और ध्यान करना चाहिए।
7. ध्यानाभ्यास में मंत्र जप आवश्यक है। सभी प्रकार के ध्यान के सबीज और निर्बीज मंत्र हैं, जिन्हें गुरू से प्राप्त कीजिए। मंत्र का पता सहज नहीं लगे, तो इष्ट के नाम में **'नमः'** जोड़कर जप किया जा सकता है, जैसे — ॐ श्री परमात्मने नमः। श्री विष्णवे नमः। श्री कृष्णाय नमः।

   चेटक मंत्रों एवं तांत्रिक मंत्रों के जप से शीघ्र सिद्धि मिलती है। नीचे एक मंत्र दे रहा हूँ, जिसके जप से समस्त क्लेशों का नाश हो, गुरू की भक्ति एवं शक्ति प्राप्त होती है, तथा ध्यान में शीघ्र सिद्धि होती है।

   मंत्र : →

   (i) **ॐ परमतत्वाय नारायणाय गुरूभ्यो नमः।** (गुरू मंत्र)

   (ii) **ॐ ह्रीं मम प्राणदेह रोम—प्रतिरोम चैतन्य जाग्रय ह्रीं ॐ नमः।** (चेतना मंत्र)

   (iii) **ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।** (गायत्री मंत्र)

   नोट :— गुरू गायत्री मंत्र का जप शीघ्र सफलतादायक है।

   ध्यान रहे, ध्यान हेतु मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन से संबंधित मंत्रों का प्रयोग न करें। केवल शांति एवं पुष्टिकर तथा भक्ति भाव निवेदित करने वाले मंत्रों का ही प्रयोग करें।
8. स्मरण रखिये कि जिस स्वरूप का ध्यान किया जाए, मंत्र भी अवश्य उसी का होना चाहिए। यदि दूसरी मूर्ति अपने—आप ध्यान में आ जाए, तो घबराइये नहीं। उसे मंगलमय भगवान की कल्याणमयी इच्छा मानकर प्रसन्न होइए।
9. जान—बूझकर आज एक मंत्र का, कल दूसरे का जाप तथा आज एक स्वरूप का ध्यान तो, कल दूसरे स्वरूप का ध्यान कदापि नहीं कीजिए। जैसे — श्री राम के स्वरूप के साथ श्री कृष्ण के मंत्र का और श्री कृष्ण स्वरूप के साथ श्री राम मंत्र का जप नहीं करना चाहिए। जहां तक संभव हो, अपननी ओर से एक ही इष्ट का अनन्य भाव से मंत्र जप सहित ध्यान करना चाहिए।
10. सभी स्वरूप भगवान के ही हैं। अतः न्यूनाधिक का भाव मन में कदापि नहीं लावें। सगुण साधक अपने इष्ट को ही सर्वोपरि मानकर ध्यान करते हैं। इष्ट में सर्वोपरि परमात्मबुद्धि और ध्यान के समय दीखनेवाली भगवान की छवि में दिव्यतया सत्य साक्षात्कार बुद्धि रखने से शीघ्र सफलता मिलती है।
11. साधना की सच्ची बलवती इच्छा रहने पर सद्गुरु स्वयं मार्ग का उपदेश देते हैं, चाहे स्वयं स्वप्न में या किसी सत्यपुरूष से दिलाते हैं। आप केवल पूरी निष्ठा, श्रद्धा, लगन एवं नियमितता के साथ इष्ट का ध्यान एवं मंत्र जप का अभ्यास करते रहिए। धीरे—धीरे मन शांत होता चला जाएगा, और अनुभूति होने लगेगी। जो भी अनुभूतियां हों, उनका आनंद लीजिए, किंतु व्यर्थ ही मान—यश प्राप्ति के लिए, उन्हें कहते नहीं फिरिए। कहने से उनकी पुनरावृति घट जाती है। साधना में अनुभूति देर—सबेर होते रहेगी — अभ्यास नहीं छोड़िए, क्योंकि परिवर्तन कारण शरीर में होता है। स्थूल शरीर में भले दृष्टिगोचर नहीं हो। साधना परम गोपनीय होती है।

प्रस्तुति :— श्री अभिषेक कुमार, (मंत्र, तंत्र यंत्र विशेषज्ञ, महाविद्याओं के सिद्ध साधक एवं शक्ति सिद्धांत के व्याख्याता)
परमपूज्य गुरुदेव श्री निखिलेश्वरानंद जी महाराज के परम प्रिय शिष्य, शक्ति अनुसंधान केंद्र, मो0:— हजारी, नून का चौराहा, पटना सिटी.
Mob:- 9852208378, 9525719407. E-mail:- shaktianusandhankendra@gmail.com

12. साधना में चेष्टा कीजिए कि : →
   (i) जरूरत भर बोलें। गाय जैसे अपनी वाणी व्यर्थ नहीं बिखेरती, वैसे ही आप भी न बिखेरें – **गोपश्वादि बद्धां निरोधः।** कुछ देर तक, कम–से–कम जप–ध्यान तक तो मौन रखें। नेत्र, कान, हाथ–पांव, किसी भी इन्द्रिय का और शरीर का व्यवहार प्रयोजन भर के लिए करें। यदि इन्द्रियों को हम व्यर्थ कामों से नहीं रोक पायेंगे तो भला मन को कैसे वशीभूत कर सकेंगे?
   (ii) शिशु की तरह अन्यमनस्क दशा में रहिए।
   (iii) तंद्रा में जैसे अहंकार की स्फूर्ति नहीं होती, वैसे रहिए।
   (iv) साधना में सुषुप्ति नहीं आए, चेतना लुप्त नहीं हो, किंतु जागृति या बर्हिज्ञान न हो।

13. केवल मंत्र जप र्प्याप्त नहीं होता। मंत्र जप मानो भोजन तैयार करने की तरह है, खाने की तरह नहीं। मंत्र–जप का उद्देश्य मन को बाहरी संसार के अनुभवों से हटाना है और जब मन संसार से हट जाता है, अलग हो जाता है, तब शरीर को हिलाए बिना माला रख दीजिए और किसी आकृति या छवि के किसी खास बिंदु पर मन को एकाग्र करने की कोशिश कीजिए। अतः ध्यान का अभ्यास करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए दो चीजें अनिवार्य हैं – (i) मंत्र जो कभी बदलता नहीं और (ii) ध्यान के लिए निश्चित आकृति जिसे इष्ट देवता कहते हैं।

14. नादाभ्यास और त्राटक की भांति जपयोग भी ध्यान में गहरा उतरने की एक विधि है। जप के समय जब आप मंत्रों की आवृति कीजिए तो मन को (i) हृदय (ii) कंठ या (iii) भ्रू–मध्य में रखने की चेष्टा करें। इनमें से किसी एक जगह मन को केंद्रित करके वहीं मंत्र की ध्वनि निःसृत स्वरलहरी को घड़ी की टिक–टिक की भांति सुनने की कोशिश कीजिए। यदि **'ॐ'** का जप कर रहें हैं, तो स्वरलहरी न तो बहुत तीव्र हो और न बहुत मंद। मंत्र की पुनरावृति एक सुर–ताल में 15 से 20 मिनट तक नहीं करें। बीच में स्वरलहरी टूटे नहीं। बीच में अन्य विचार आये तो भी चिंता नहीं करें और मंत्र जाप जारी रखिए। ध्यान लगने में समय लगेगा। जब मूड ठीक रहेगा, तो मन आधे घंटे के जप के बाद ही ध्यान में लग जाएगा, अन्यथा अधिक समय लग सकता है। याद रखना चाहिए कि मंत्र–जप ध्यान करने की तैयारी है।
   मुझे तो मात्र एक माला मंत्र जप करते ही ध्यान लग जाता है, जो न्यूनतम एक घंटे बाद ही खुलता है। गृहस्थ जीवन में रहते हुए यह भी एक अच्छा संकेत है।

15. अगर जप के समय आपका मन–हृदय विशुद्ध चक्र या आज्ञा चक्र में आबद्ध नहीं होता है, तो आप पहले मंत्र–जप का अभ्यास वास लेने के साथ कीजिए। हर सांस को नासापुट से कंठ तक और कंठ से नासापुट तक भीतर जाते तथा बाहर निकलते अनुभव कीजिए। अनुभव कीजिए कि मानसिक ऊर्जा या चैतन्य का प्रवाह इन दो जगहों के बीच में हो रहा है। मन सांस के साथ कंठ तक जाए, फिर सांस बाहर निकलते समय नासापुट तक जाए। कुछ देर के बाद सांस की गति को ख्याल से हटा दीजिए और इस मार्ग पर केवल चैतन्य के प्रवाह को अनुभव कीजिए। इससे ध्यान की पृष्ठभूमि तैयार हो जाएगी। अब मन की इस गति के साथ 'सोहम्' के मंत्र का जाप कीजिए। अभ्यास के समय आंखें बंद रखिए। सांसे जब भीतर जाए तो **'सो'** और बाहर निकले तो **'हम'**। यह सांस की ही ध्वनि है, ऐसा अनुभव कीजिए। **'सोहं'** के बदले आप अपने इष्ट मंत्र का भी प्रयोग कर सकते हैं। सजगता बनाए रखिए। सांस ले रहे हैं तो सांस के प्रति सजगता है, सांस के साथ मंत्र–जप चल रहा है, तो इसके प्रति सजग रहें। आप जो कुछ कर रहे हैं, उसके प्रति मन को सदैव सजग रखें। जब सांस के साथ जप सहज हो जाए तो आप मंत्र जप का अभ्यास हृदय, कंठ तथा भ्रू–मध्य में मन को एकाग्र करके कीजिए।

16. सांस के साथ जप करते समय मन को मेरूदण्ड में नीचे से ऊपर (मूलाधार से सहस्रार) तक चढ़ते–उतरते अनुभव कीजिए। यह भी एक सुंदर तरीका है। इससे अवचेतन की गहराई में उतरना अधिक सहज होता है।

17. याद रखें मंत्र–जप एक साधन है, जिसके द्वारा मन को इष्ट की छवि में इष्ट के ध्यान में लगाया जाता है। जैसे–जैसे मन एकाग्र होता जाएगा, मानसिक शुद्धि होती जाएगी, इष्ट की छवि साफ और जीवन्त होती

जाएगी। ध्यान की गहराई में आप जो कुछ देखते हैं, वस्तुतः वह आपके चैतन्य का ही रूप है, जो इष्ट के साथ तद्रूप हो जाता है।

18. मंत्र—जप से हृदय ग्रंथि खुल जाती है और सिद्धि निःसंदेह प्राप्त होती है :—

भजपत्सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्नसंशयः।

19. ध्यान पहले स्थूल का करें। इष्ट देव के विभिन्न अंगों एवं आभूषणों को बारी—बारी से मन से निहारते रहें और फिर मुखमंडल या चरणकमलों के दर्शन में मन रमाइए। इस आलम्बन के द्वारा सफलता पाने के बाद ज्योति का ध्यान करें — पीला, श्वेत, लाल, हरा और नीला। ज्योति से अपने अंगों को भरिए। अंतिम चरण में सूक्ष्म ध्यान का अभ्यास कीजिए।

20. ध्यान में नाद—अनुसन्धान भी किया जाता है। जप के साथ नाद—अनुसंधान उत्तम है। आचार्य शंकर का कथन है — 'एकाग्र मन से स्वरूप चिंतन करते हुए दाहिने कान से अनाहत ध्वनि सुनाई देती है। भेरी, मृदंग, शंख आदि आहत नाद में जब मन रमता है, तब अनाहत मधुर नाद की महिमा क्या बखानी जाए। चित्त जैसे—जैसे विषयों से उपराम होगा, वैसे—वैसे यह अनाहत नाद अधिकाधिक सुनाई देगा। नादाभ्यन्तर ज्योति में जहां मन लीन हुआ, तहां फिर इस संसार में आना नहीं पड़ता, अर्थात् मोक्ष ही प्राप्त होता है।

21. (i) मंत्रार्थ का चिंतन (ii) नाद का श्रवण और (iii) प्रकाश का अनुसंधान, ये तीन बातें साधनी पड़ती हैं। अंत में मन स्वरूप में लीन होता है, तब प्राण, नाद और प्रकाश भी लीन हो जाते हैं और अपार अथाह आनंद प्राप्त होता है।

22. जप करते—करते जब थक जाइए, तब ध्यान कीजिए। ध्यान करते—करते जब थक जाइए, तब फिर जप कीजिए तथा जप और ध्यान दोनों से थक जाइए तब आत्मतत्व का चिंतन कीजिए।

भजापाच्छ्रान्तः पुनर्ध्यावेद ध्यानाच्छ्रान्तः पुनर्जपेत। जपर्ध्यान परिश्रान्त आत्मानं च विचारयेत्।।

23. जप, ध्यान और तत्व चिंतन सतत करना ही अखण्ड जप है। लगातार बारह वर्षों तक ऐसा जप हो, तो उसे तप कहते हैं।

24. जब हम मन एकाग्र करने लगते हैं, तब बड़े—बड़े तमाशे होते हैं। स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती ने कुछ तमाशों को गिनाया है, जैसे—

(क) कभी शरीर से मन ऊपर उठना चाहेगा, तब मन प्राण से तो पृथक होगा नहीं। अतः मनोमिश्रित प्राण शरीर से एक हो जाएगा। इससे शरीर स्तम्भित हो जाएगा और हिलाने से भी नहीं हिलेगा।

(ख) यदि मन प्राण द्वारा जलीय तत्व से एक हो जाए, तो अश्रुपात या स्वेद हो सकता है अथवा शरीर बर्फ जैसा शीतल हो जा सकता है।

(ग) जब मन प्राण के द्वारा तेजस तत्व से एक होता है, तो गर्मी लगती है, विवर्णता या चमक आती है। शरीर में जलन हो सकती है।

(घ) मन—प्राण यदि शरीर में वायु से एक हो गए हैं, तो शरीर में कम्पन होता है।

(ङ) यदि मन—प्राण आकाश तत्व से एक हो गए तो अनेक प्रकार के शब्द भीतर सुनाई पड़ सकते हैं, अथवा मुख से कुछ शब्द निकलने लगते हैं।

(च) ऐसा लग सकता है कि हम ऊपर उठ रहे हैं या फैल गए हैं। यदि चित्त में चित्त ही रहे तो तमस् की प्रधानता से मूर्च्छा होती है। राजस की प्रधानता से हर्ष या दुःख का विकास होता है। सत्व की प्रधानता से शांति का अनुभव होता है। यह सब अपने अंतः करण में ही होता है।

(छ) कभी मन शरीर से मिलकर मूढ़ हो जाता है, तो लोगों को समाधि का भ्रम हो जाता है।

(ज) मन, स्वर्ग या नरक पहुंच गया और देवदूत, देवता या यमदूत दिखने लगे। यह मन की क्षिप्त दशा है। मन में स्वर्ग या नरक आया नहीं है।

(झ) मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त और एकाग्रता मन की ये चार अवस्थायें हैं।

25. भक्ति के क्षेत्र में ध्यान का अनिवार्य अंग स्मरण है। पुनः—पुनः स्मरण, निरंतर स्मरण है, क्योंकि स्मरण ही आसक्ति का मूल है।

26. व्यक्तिगत साधना तथा अभ्यास के भी कुछ क्रम निर्धारित हैं। श्रद्धा और विश्वास साधना के लिए अनिवार्य सम्बल हैं। **इसी प्रकार गुरू का होना भी अनिवार्य अंग है।**

27. साधना के प्रथम क्रम में गुरु प्रदत्त मंत्र के जप के साथ गुरू के सम्पूर्ण विग्रह में भावमग्न होने की आवश्यकता है। ध्यान की दृढ़ता का प्रमाण यह है कि साधक के मनोराज्य में गुरू लीला का चिंतन ही सर्वस्व हो जाता है।

28. साधना के द्वितीय क्रम में चित्त वृतियाँ द्रवीभूत होनी आरंभ हो जाती हैं, और लीला में आसक्ति हो जाती है, मनोराज्य समाप्तप्राय हो जाता है।

29. तृतीय क्रम में आनंदोपलब्धि होने लगती है।

30. और चौथे क्रम में पूर्ण समर्पण हो जाता है, तथा इष्टाकार वृत्ति की सिद्धि हो जाती है।

31. ईश्वर न तो शास्त्रार्थ का विषय है, न विवाद का। वृत्तियों का विरोध जैसे भी हो सके, जैसे भी उन्हें उदात्त बनाया जा सके, वही कर्तव्य है।

32. प्रायः दीक्षा लिए बिना एकाग्रता नहीं होती। अतः मंत्र गुरु से प्राप्त कीजिए और उसका जप तथा ध्यान उन्हीं के निर्देशानुसार कीजिए। गुरू शिष्य के मनोभावों को देखकर मंत्र और इष्ट ठीक कर देते हैं। गुरु के वचनों में विश्वास करके यदि निष्ठा सहित साधना–भजन न किया जाए तो किसी भी हालत में कुछ नहीं होगा। सिद्ध गुरू का आश्रय मिले बिना कितना भी बुद्धिमान क्यों न हो, कितना भी प्रयास क्यों नहीं करे, ठोकर खाकर गिरना पड़ेगा ही। मंत्र सिद्धि एवं ब्रह्मतत्व की प्राप्ति गुरूकृपा से ही संभव है।

33. धैर्य चाहिए। रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि **'समय हुए बिना पक्षी अण्डा नहीं फोड़ता।'** साधक को आशा–निराशा के बीच झूलना पड़ता है। वस्तु लाभ होने तक मन की अवस्था डांवाडोल नहीं हो। उत्तम गुरू पा जाने पर वे मन को इस स्थिति से भी झट से ऊपर उठा दे सकते हैं, किंतु यदि बिना ठीक समय के आए मन को ऊपर उठा दिया जाए तो उसका वेग संभाला नहीं जा सकता। उल्टे शरीर और मन का अनिष्ट हो सकता है। ऐसी अवस्था में बड़ी सावधानी से रहना पड़ता है। सद्गुरु के आश्रय में रहकर उनके उपदेशानुसार सात्विक आहार, पूर्ण–ब्रह्मचर्य पालन इत्यादि नियमों का सुचारू रूप से पालन करना पड़ता है। यदि ऐसा न किया जाए, तो सिर का गर्म होना, सिर चकराना इत्यादि अनेक रोगों से कष्ट पाना पड़ता है।

34. जप और ध्यान में कभी–कभी मन अत्यधिक नैराश्य की घटा से घिर जाता है। यह खतरनाक स्थिति होती है। इसी स्थिति के खतरे से बचने के लिए सशक्त सिद्ध गुरु की आवश्यक्ता होती है। एक वृन्दावन की महिला संत गंगा के बीच में नावों की बेड़ा पर अनुष्ठानपूर्वक एकांत मौन के साथ साधना में बैठी। निर्जल, निराहार, मौन। सात–आठ दिनों बाद ही आधी रात को उनकी हालत खराब हो गयी और सहसा मृत्यु को सामने समझ कर उन्होंने योग–विधि से शरीर त्यागने का विचार कर लिया। इसी समय जटाजूट सम्हाले देवराहा बाबा वहाँ प्रकट हो गए और उपस्थित बाधा का अनुग्रहपूर्वक निवारण कर दिया। स्वामी ब्रह्मानंद, रामकृष्ण परमहंस के साथ रहकर साधना किया करते थे। एक दिन ध्यान जम नहीं रहा था। इतने दिनों से मैं यहाँ हूँ, कुछ भी तो नहीं हुआ, फिर क्या लेकर रहा जाए? क्यों न घर वापस चला जाऊँ? वहाँ दो–चार चीजों में मन तो लगा रहेगा? ऐसे ही भावों से वे घिर गए। वे काली–मंदिर से बाहर निकले। रामकृष्ण बरामदे में टहल रहे थे। ब्रह्मानंद को देखकर वे कमरे में चले गए। उन्हें प्रणाम कर प्रसाद लेने का नियम था। प्रणाम करने पर परमहंस बोल उठे – 'देख तेरा मन परदे से ढक गया है।' ब्रह्मानंद ने सारी हालत बताई। रामकृष्ण परमहंस ने उनकी जीभ पर कुछ लिख दिया। तुरंत ही सारा कष्ट भूलकर वे अपूर्व आनंद में विभोर हो गए। अतः जब भी मंत्र–जप एवं ध्यान में ऐसी नैराश्यपूर्ण स्थिति आए, सद्गुरू का ध्यान कीजिए। कातर होकर इष्ट को एकांत में पुकारिए। यह घटा छंट जाएगी, और मन आनंद से उत्साहित हो जाएगा।

35. जप–ध्यान से केवल मन में ही शांति होती है, ऐसी बात नहीं है। इनसे शारीरिक लाभ भी होता है। रोग–बीमारी घट जाती है। सुंदर स्वास्थ्य के लिए भी जप और ध्यान करना आवश्यक है।

॥ॐ मणि पद्मे हुं॥

36. पहले–पहल ध्यान करना मानों मन के साथ युद्ध करना है। चंचल मन को धीरे–धीरे स्थिर कर इष्ट के चरण–कमलों (पद–पंकज) में लगाना चाहिए। इस अभ्यास में कुछ समय के बाद सिर थोड़ा गर्म हो जाता है। अतएव पहले–पहल अधिक ध्यान–धारण करके दिमाग से ज्यादा कार्य लेना ठीक नहीं। यह सब धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए।

37. स्वामि ब्रह्मानंद कहते हैं – ध्यान करते–करते कभी–कभी ज्योतिदर्शन होता है और कभी–कभी प्रणव ध्वनि, घंटा ध्वनि अन्य कोई दूर का शब्द सुनाई पड़ता है। परंतु यह सब कुछ भी नहीं है, और आगे बढ़ना होगा। फिर भी ये लक्षण अच्छे हैं। ऐसा होने पर समझना चाहिए कि ठीक रास्ते पर जाया जा रहा है।

38. सत्संग और निर्जन में जप–ध्यान दोनों आवश्यक हैं। निर्जन में जप–ध्यान करने से मन सहज ही अन्तर्मुखी होता है, फालतू चिंतायें कम आती हैं। किंतु थोड़ी उन्नति हुए बिना पूर्ण निर्जनवास नहीं किया जा सकता। बहुत–से लोग एकदम निःसंग होने की कोशिश से पागल हो गए हैं। अतः बीच–बीच में साधु–संगति हमारी प्रारम्भिक तैयारी को ठीक कर देती है, और पूर्ण निर्जन में जप–ध्यान संभव होने लगता है।

39. साधक को कुछ तितिक्षा का अभ्यास भी जरूरी है, जैसे अमावस्या, पूर्णिमा या एकादशी को एकाहार, फलाहार या निराहार रहना। स्मरण–मनन सदा चलता रहे। सब समय स्मरण चिंतन का अभ्यास हो जाने पर आसन पर बैठते ही ध्यान जम जाता है।

40. आसन पर बैठते ही एकदम जप–ध्यान आरंभ करना ठीक नहीं होता। पहले विचारपूर्वक मन को बाहर से समेट लाना होगा, फिर जप–ध्यान आरंभ करना होगा। मन, बुद्धि या इन्द्रिय संघर्ष से ही वशीभूत होंगे। मैं तो लघु पूजन कर्म संपन्न करने एवं स्तोत्रादि के पाठ के बाद ही जप एवं ध्यान आरंभ करता हूँ।

41. अपने भीतर का भाव (अनुभूति) अधिक लोगों के पास प्रकट करना ठीक नहीं, विशेषकर विपरीत रूचि वालों के पास। जिन लोगों से भाव का मेल है, उनके साथ साधना–भजन संबंधी बातचीत करने से उपकार होता है। एक पथ के पथिक परस्पर सहायता पहुंचा सकते हैं। साधन–भजन का ढोल बजाने से अनिष्ट होता है।

42. रात्रि में प्रकृति शांत हो जाती है। जीव–जंतु खर्राटे भरते हैं – साधना के लिए यही उपयुक्त समय है। गंभीर रात्रि में जप–ध्यान थोड़ी ही चेष्टा से जम जाता है। साधन–भजन का सुंदर समय है, संधिक्षण और गंभीर रात्रि। पर इसके लिए निद्रा पर विजय पाना आवश्यक है। इस समय विशेष तामसी प्रधान शक्तियों की उपासना श्रेष्ठ रहती है, शीघ्र सिद्धि होती है। दर्शन भी इसी समय संभव होता है। रामकृष्ण परमहंस को रात्रि के चतुर्थ प्रहर में ही भगवती से साक्षात्कार हुआ था। मुझे भी एक महाअनुभूति महानिशा काल में ही हुई थी। भगवान राम के सामने माता दुर्गा भी नवरात्र के अष्टमी की मध्य रात्रि को ही प्रकट हुई थी। भगवान बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति भी पूर्णिमा की अर्धरात्रि को ही हुआ था। पर इस समय पूजन करने वालों को दृढ़ निश्चयी, साहसी एवं त्राटक का अभ्यास करने वाला होना चाहिए। अनाड़ी, गुरु भक्ति हीन, अदीक्षित लोगों को रात्रि में 9 बजे के बाद पूजन नहीं करना चाहिए। देवी काली के साधकों के लिए यह मंत्र प्रारंभ में अति सहायक सिद्ध होगा – **ॐ क्रीं क्रीं क्रीं ॐ**

43. गुरूमख से सुनकर भली–भांति हृदयंगम कर लेने से मंत्र की और भगवान (इष्ट) को समर्पित कर देने से कर्म की शुद्धि होती है। अतः जप और ध्यान के बाद अपने सारे मंत्र जप को इष्ट के चरण कमलों में समर्पित कर देना चाहिए। इससे मंत्र सिद्धि शीघ्र होती है। विधि निम्नांकित है –

44. मंत्र में पूरा विश्वास, इष्ट में पूर्ण निष्ठा और सद्गुरू में समग्र आस्था एवं श्रद्धा रखते हुए सतत् प्रयत्नशील एवं सजग रहकर विधिपूर्वक जप–ध्यान कदापि निष्फल नहीं होता। समय पर इष्ट दर्शन अवश्यमेव होता है। हमें आज ही, अभी से जप–ध्यान के साधन द्वारा अपने मन की अनंत शक्ति को केंद्रित करने का प्रयास कर देना चाहिए। भगवान का अनुग्रह तथा उनके द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता में दिए गए उपदेश सदैव हमारे साथ हैं। ईश्वर की कृपा दृष्टि हम सभी पर समान रूप से बरस रही है। उनका अधिकाधिक ग्रहण करने में ही बुद्धिमता है। वे परम कृपालु भगवान श्री हरि सदा ही हमारे साथ हैं। आइए उनकी कृपा दृष्टि प्राप्त करने के लिए उनकी अखंड भक्ति में लीन हो जाएं।

।। बोलो! भगवान श्री कृष्ण की जय।।

प्रस्तुति :– श्री अभिषेक कुमार, (मंत्र, तंत्र यंत्र विशेषज्ञ, महाविद्याओं के सिद्ध साधक एवं शक्ति सिद्धांत के व्याख्याता)
परमपूज्य गुरूदेव श्री निखिलेश्वरानंद जी महाराज के परम प्रिय शिष्य, शक्ति अनुसंधान केंद्र, मो0:– हजारी, नून का चौराहा, पटना सिटी.
Mob:- 9852208378, 9525719407. E-mail:- shaktianusandhankendra@gmail.com

परमपिता परमेश्वर की जय

!! सद्गुरूदेव महाराज की जय!!

ध्यान पर कुछ प्रमुख आध्यात्मिक व्यक्तियों के विचार एवं लेख

-: हमारा मन :-

मन ही मनुष्य के मोक्ष व बंधन का कारण है। मनुष्य का तन केवल हड्डी, मांस, मज्जा इत्यादि का पुतला ही नहीं है, बल्कि उसमें मन (विचार) भी है, और मन में भिन्न–भिन्न प्रकार के संस्कार और विकार भरे पड़े हैं। बचपन से मन पर जिस विषय का भी प्रभाव पड़ा है, वह मन में कहीं दबा पड़ा है। जब भी उसे काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, डर, ईर्ष्या, राग–द्वेष का जोर आता है, तभी इनका प्रभाव शरीर पर, श्वास पर और मन पर पड़ा है। क्रोध में शरीर पर नियंत्रण नहीं रहता, शरीर की रंगत बदल जाती है, श्वास उखड़ जाता है। डर के प्रभाव से शरीर कांपने लगता है, रंग पीला पड़ जाता है, श्वास क्रिया भी रूकती है। इसी प्रकार काम भी शरीर, मन और श्वास पर प्रभाव डालता है। ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि के प्रभाव भी शरीर और श्वास पर पड़ते हैं। शरीर और श्वास पर पड़ने वाले प्रभाव तो स्पष्ट दिखते हैं, परंतु इनका प्रभाव मन पर ही होता है, जो दिखाई नहीं देता। शरीर पर दिखने वाले प्रभाव से कहीं अधिक प्रभाव मन पर पड़ता है। यह सब संस्कारों के रूप में मन के किसी भाग में दबे पड़े रहते हैं। यही संस्कार ही मन के विकार हैं।

मन का स्वभाव क्या है? किसी एक विषय पर टिके रहना मन को पसंद नहीं, जब इसे किसी एक वस्तु या विषय पर लगाया जाए तो मन भागकर दूसरे विचारों या विषयों पर चला जाता है। बेकार के विचारों में पड़ जाता है। हर दिशा में घूमता है। बेलगाम घोड़े की भांति हर ओर भागता–फिरता है, किसी एक विषय पर टिकना इसका स्वभाव नहीं। मन को एकांत पसंद नहीं। इसे तो देखना, सुनना, सूंघना, स्वाद लेना, स्पर्श करना सभी इन्द्रियों के विषय इसे पसंद है। इसके लिए कोई साथी, कोई सामान तो चाहिए ही। मन बहुत ही गतिशील है। प्रकाश की गति तो 3×10^8 मीटर प्रति सेकंड है, पर मन की गति तो नापी नहीं जा सकती, इसको हर समय गति चाहिए ही। मन वर्तमान में नहीं रहना चाहता, अब क्या हो रहा है, इसमें इसकी रूचि नहीं। इसे तो भूतकाल और भविष्य काल ही पसंद है। आज और अब जो हो रहा है, उसमें तो सीमा बंध गई और बंदिश में रहना मन का स्वभाव नहीं। वर्तमान में तो इसका दम घुटता है, भूत और भविष्य में तो बहुत स्थान है। मन को तो यही पसंद है। मन इच्छाओं की उत्पत्ति करता है, और यह कार्य हर समय होता रहता है। एक इच्छा पूरी हुई तो उसने अनेक इच्छाओं को जन्म दे दिया। इच्छायें अनंत हैं, और उनकी पूर्त्ति होना असंभव है। इच्छाओं की पूर्त्ति न होना या उनका दबाया जाना ही तरह–तरह के दु:खों का कारण है।

हमारे मन में इच्छा नहीं उद्देश्य रहना चाहिए। किसी को इस वर्ष की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने की इच्छा है। यह उसका उद्देश्य हुआ और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतू अन्य छोटी–छोटी इच्छाओं का त्याग कर देना, जो कि क्षणिक है, जैसे – मित्रों के संग गप्पें हांकना, फिल्म देखना, घूमना, टहलना इत्यादि।

मनुष्य के सुख–दु:ख का कारण मन व उसकी वृत्तियाँ ही हैं। किसी भी वस्तु का अच्छा या बुरा लगना मन की मान्यता के कारण ही है। मन ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही बाह्य जगत की वस्तुओं व विषयों का आनंद उठाता है। ज्ञानेन्द्रियाँ पांच हैं – आंख, कान, नाक, जीभ, व त्वचा। उनके विषय देखना, सुनना, सूंघना, स्वाद लेना, बोलना तथा स्पर्श करना है। मन इन्द्रियों के विषयों के रस लेता है। योग में मन को जीतने के लिए पहले इन्द्रियों के साधन बनाते हैं, फिर मन को ही साधन बनाते हैं। मन से ही मन को वश में करते हैं।

-: ध्यान : एक गहन चेतन विश्राम :-

हम अपना अधिकांश जीवन चेतना की तीन अवस्थओं द्वारा जीते हैं – जागृत, स्वप्निल व सुषुप्त अवस्था। चेतना की जागृत अवस्था में हम जगत का अनुभव पांच इन्द्रियों द्वारा करते हैं। हम इन इन्द्रियों द्वारा अनुपस्थित हो

तो उस इन्द्रियों का पूरा परिमाण खो जाता है। जो सुन नहीं सकता, वो ध्वनि के सारे कार्यक्षेत्रों से वंचित रह जाता है। इसी प्रकार, जो देख नहीं सकता, वह सभी सुंदर दृश्यों और रंगों से वंचित है। इसलिए इन्द्रिय के पदार्थों से इन्द्रिय अधिक महत्वपूर्ण तथा अधिक बड़ी है।

मन इन्द्रियों से उच्चतर है। मन अनंत है, उसकी इच्छायें कईं हैं, लेकिन इन्द्रियों की आनंद लेने की क्षमता सीमित है। संवेदात्मक पदार्थों को ज्यादा से ज्यादा चाहने लालसा है। हालांकि व्यक्ति एक जीवनकाल में सीमित मात्रा का ही आनंद ले सकता है, पर उसे जगत की सारी संपत्ति चाहिए।

संवेदात्मक पदार्थों की अत्यंत महत्व देना लालसा है। इन्द्रियों को अधिक महत्व देना हमें लोभ की ओर ले जाता है। मन और उसकी इच्छाओं को अत्यंत महत्व देना हमें भ्रान्ति की आरे ले जाता है। हम मन की धारणाओं को पकड़ कर बैठ जाते हैं, और चाहते हैं कि एक निश्चित तरह से सब घटित हो। इस प्रकार मन की धारणायें हमें अनंत चेतना, जो हमारा एक हिस्सा है, को समझने में बाधा—रूप हो जाती हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि इन्द्रियाँ या मन बुरे हैं। हमें वस्तुओं के बीच अंतर पहचानना सीखना चाहिए और हमेशा क्या हो रहा है, उसके प्रति जागृति रहना चाहिए। तब हमारे भीतर स्पष्टता प्रकट होती है। ये चेतना की उच्चतर अवस्था की ओर जाने का पहला कदम है।

जागृत अवस्था में व्यक्ति निरंतर देखने में, खाने में कार्य करने इत्यादि में लगा रहता है। दूसरी पराकाष्ठा है, सुषुप्त अवस्था, जहां व्यक्ति संपूर्णतया कटा हुआ और सुस्त होता है। जगने के बाद भी सुस्ती और भारीपन ठहरा रहता है। व्यक्ति जितना अधिक सोता है, उतनी ही अधिक सुस्ती महसूस करता है, क्योंकि सोने में बहुत अधिक ऊर्जा व्यय हो जाती है। फिर स्वप्निल अवस्था है, जहां न तो व्यक्ति सो रहा होता है, न ही जगा हुआ होता है। यहां न तो आपको विश्राम मिलता है, न ही आप परिसर्ग के प्रति सजग होते हैं।

ध्यान -

चेतना की उच्चतर अवस्था जगने, सोने और स्वप्नशील होने के कहीं बीच में है। यहां हमें पता है कि हम हैं, लेकिन हमें ये नहीं पता कि हम कहाँ हैं। ये ज्ञान कि मैं हूँ, लेकिन मुझे ये नहीं मालूम कि मैं कहाँ हूँ या क्या हूँ को शिव कहते हैं। ये अवस्था व्यक्ति जितना अनुभव कर सके, संभवतः उतना गुह्यतम विश्राम देती है।

ध्यान दो तरह से मदद देता है — ये हमारे शरीर तंत्र में तनाव को प्रवेश करने से रोकता है और साथ ही जमा हुए तनाव का निर्मोचन करता है। रोजाना जीवन में ध्यान के सम्मिलन से हमारे भीतर एक उच्चतर चेतना कहते हैं। ये ब्रह्म चेतना सारे ब्रह्माण्ड को अपने भाग के रूप में गोचर करती है। जब हम विश्व को अपने ही भाग स्वरूप गोचर करते हैं, तब प्रेम बड़े प्रभावशाली ढंग से विश्व और हमारे बीच बहने लगता है। ये प्रेम हमें जीवन के विरोधात्मक बलों एवं उपद्रवों पर काबू पाने के लिए सशक्त करता है। क्रोध और निराशा पल भर के लिए आकर ओझल हो जाने वाली क्षणिक भावनायें मात्र बन जाती हैं। चेतना की ये उच्चतर अवस्था ऐसे ही एक दिन घटने वाली नहीं है। ये चेतना का अंकुर तुम्हारे भीतर है — ध्यान जैसे आध्यात्मिक अभ्यासों द्वारा इसका पालन—पोषण करने की आवश्यक्ता है। कोई नारियल का वृक्ष तीन वर्षों में फल देता है और कोई दस वर्षों में। और जिनका पालन—पोषण नहीं किया जाता, वे कभी फल नहीं देते, वे केवल जीवित रहते हैं।

चेतना की उच्चतर अवस्था को प्राप्त करने के लिए किसी जटिल कूटनीति की आवश्यकता नहीं है। व्यक्ति को केवल छोड़ देने की कला सीखनी चाहिए। ज्ञान, समझदारी और अभ्यास का संगम जीवन को संपूर्ण बनाते हैं। जब तुम चेतना की उच्चतर अवस्था में आगे बढ़ते तो पाते हो कि विभिन्न परिस्थितियों और उपद्रवों से असंतुलित होकर अब तुम गिर नहीं जाते। तुम सशक्त, फिर भी कोमल बन जाते हो — एक मृदु और सुंदर व्यक्ति, जो किसी शर्त के बिना जीवन में विभिन्न मूल्यों को अनुकूल बनाने में समर्थ हो। जैसे—जैसे तुम्हारी चेतना खुलती है, और तुम्हारी समग्र तंत्र—व्यवस्था शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक रूप उन्नत होती है, तुम्हारा जीवन वास्तव में जीने योग्य बन जाता है। —— ***श्री श्री रविशंकर***

-: ईश्वर तक पहुंचने का मार्ग है ध्यान :-

*जीवन के आनंद का मार्ग ध्यान से होकर जाता है। परमात्मा तक अगर कोई भी कभी पहुंचा है, तो ध्यान की सीढ़ी ही उसके वहां तक पहुंचने की सीढ़ी थी। – **ओशो***

सुना है मैंने, कोई नाव उलट गई थी। एक व्यक्ति उस नाव में बच गया और एक निर्जन द्वीप पर जा लगा। दिन, दो दिन, चार दिन, सप्ताह, दो सप्ताह उसने प्रतीक्षा की कि जिस बड़ी दुनिया का वह निवासी था वहां से कोई उसे बचाने आ जाए। फिर महीने भी बीत गए और वर्ष भी बीतने लगे। फिर किसी को आते न देखकर वह धीरे–धीरे प्रतीक्षा करना भूल गया।

पांच वर्षों के बाद कोई जहाज वहां से गुजरा। उस एकांत निर्जन द्वीप से उस आदमी को निकालने के लिए जहाज ने लोगों को उतारा और जब उन आदमियों ने उस खो गए आदमी से चलने को कहा तो वह विचार में पड़ गया। उन लोगों ने कहा कि आप विचार कर रहे हैं! चलना है या नहीं? उस आदमी ने कहा – अगर तुम्हारे साथ कुछ अखबार हों, जो तुम्हारी दुनिया की खबर लाए हों, तो मैं पिछले दिनों के कुछ अखबार देख लेना चाहता हूँ। अखबार देखकर उसने कहा, तुम अपनी दुनिया संभालो और अखबार भी। मैं जाने से इंकार करता हूँ।

बहुत हैरान हुए वे लोग। उनकी हैरानी स्वाभाविक थी। पर वह आदमी कहने लगा, इन पांच वर्षों में मैंने जिस शांति, जिस मौन और जिस आनंद को अनुभव किया, वह मैंने पूरे जीवन के पचास वर्षों में तुम्हारी उस बड़ी दुनिया में कभी अनुभव नहीं किया था। सौभाग्य और परमात्मा की अनुकम्पा कि उस दिन तूफान में नाव उलट गई और मैं इस द्वीप पर आ लगा। यदि मैं इस द्वीप पर न लगा होता तो शायद मुझे भी पता न चलता कि मैं किस बड़े पागलखाने में पचास वर्षों से जी रहा था।

हम उस बड़े पागलखाने के हिस्से हैं। उसमें पैदा होते हैं, उसमें ही बड़े होते हैं, उसमें ही जीते हैं। इसलिए कभी पता भी नहीं चल पाता कि जीवन में जो भी पाने योग्य है, वह सभी हमारे हाथ से चूक गया। जिसे हम सुख कहते हैं, जिसे हम शांति कहते हैं, उसका न तो सुख से कोई संबंध है, और न शांति से। जिसे हम जीवन कहते हैं, शायद वह मौत से किसी भी हालत में बेहतर नहीं है। पर परिचय कठिन है। चारों ओर एक शोरगुल की दुनिया है, चारों ओर शब्दों का, शोरगुल का उपद्रवग्रस्त वातावरण है। उस सारे वातावरण में हम वे रास्ते भूल जाते हैं, जो भीतर मौन और शांति में ले जा सकते हैं। इस देश में व देश के बाहर भी कुछ लोगों ने अपने भीतर भी एकांत द्वीप की खोज कर जी है। न तो यह संभव है कि सभी की नावें डूब जायें, न यह संभव है कि इतने तूफान उठें, और न ही यह संभव है कि इतने निर्जन द्वीप मिल जायें, जहां सारे लोग शांति और मौन को अनुभव कर सकें। लेकिन फिर भी यह संभव है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर उस निर्जन द्वीप को खोज लें।

ध्यान अपने भीतर उस निर्जन द्वीप की खोज का मार्ग है। वह भी समझ लेने जैसा है।

दुनिया में सारे धर्मों में विवाद है। सिर्फ एक बात के संबंध में विवाद नहीं है, और वह बात ध्यान है। मुसलमान कुछ और सोंचते हैं, हिंदु कुछ और ईसाई कुछ और, पारसी कुछ और तथा बौद्ध कुछ और। उन सबके सिद्धांत भिन्न–भिन्न हैं। लेकिन एक बात के संबंध में इस पृथ्वी पर कोई भेद नहीं है। वह यह है कि जीवन के आनंद का मार्ग ध्यान से होकर जाता है। परमात्मा तक अगर कोई भी कभी पहुंचा है तो ध्यान की सीढ़ी ही उसके वहां तक पहुंचने की सीढ़ी थी।

इस ध्यान के विज्ञान के संबंध में दो–तीन बातें आप से कहना चाहूंगा। पहली बात तो यह कि साधारणतः जब हम बोलते हैं, तभी हमें पता चलता है कि हमारे भीतर कौन–से विचार चलते हैं। ध्यान का विज्ञान इस स्थिति को अत्यंत ऊपरी अवस्था मानता है। अगर एक आदमी न बोले तो हम पहचान भी न पायेंगे कि वह कौन है, क्या है। सुकरात ने किसी से मिलते वक्त कहा था कि तुम बोलो कुछ, तो पहचान लूं कि तुम कौन हो? तुम न बोलो कुछ तो पहचान मुश्किल है, इसलिए तो हम जानवरों को अलग–अलग नहीं पहचान पाते। क्योंकि वे बोलते नहीं है और मौन में सारी शक्लें एक जैसी हो जाती हैं।

शब्द हमारे बाहर प्रकट होता है, तभी हमें पता चलता है कि हमारे भीतर क्या था। ध्यान का विज्ञान कहता है, यह अवस्था सबसे ऊपरी अवस्था है, चित्त की। यह ऊपर की पर्त है। हमारे बोलने से पहले भी हमारे भीतर

विचार चलता है, अन्यथा हम बोलेंगे कैसे। अगर मैं कहता हूँ **'ओम'** तो इसके पहले मैंने कहा, उसके पहले मेरे भी ओठों के पार और मेरे हृदय के किसी कोने में **'ओम'** का निर्माण हो जाता है।

ध्यान कहता है, वह दूसरी पर्त है व्यक्तित्व की गहराई की। साधारणतः आदमी ऊपर की पर्त पर ही जीता है। उसे दूसरी पर्त का पता भी नहीं होता। उसके बोलने की दुनिया के नीचे भी एक सोचने का जगत है, उसका भी कुछ पता नहीं होता। काश! हमें हमारे सोचने के जगत का पता चल जाए तो हम बहुत हैरान हो जाए। जितना हम सोचते हैं, उसका थोड़ा—सा हिस्सा वाणी में प्रकट होता है। ठीक ऐसे ही जैसे एक बर्फ के टुकड़े को हम पानी में डाल दें तो एक हिस्सा ऊपर हो जाएगा और नौ हिस्से नीचे डूब जायेंगे। हमारा भी नौ हिस्सा जीवन, विचारों के नीचे डूबा रहता है। एक हिस्सा ऊपर दिखाई देता है। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि आप क्रोध कर चुकते हैं, तब आप कहते हैं कि यह कैसे संभव हुआ। एक आदमी हत्या कर देता है, फिर पश्चाताप करता है। कहता है मैंने कैसे हत्या की। वह कहता है, इनस्पॉट ऑफ मी, मेरे बावजूद भी यह हो गया। मैंने तो कभी ऐसा करना ही नहीं चाहा था। उसे पता नहीं कि हत्या आकस्मिक नहीं है। वह पहले भीतर निर्मित होती है। लेकिन वह तल गहरा है, उस तल से हमारा कोई संबंध नहीं रह गया है।

ध्यान कहता है, पहले तल का नाम 'बैखरी' है। दूसरे तल का नाम मध्यमा है और उसके नीचे भी एक तल है, जिसे हम ध्यान का विज्ञान पश्यन्ति कहते हैं। इसके पहले कि भीतर होठों के पार हृदय के कोने में शब्द निर्मित हों, उससे भी पहले शब्द का निर्माण होता है। पर उस तीसरे तल का तो हमें साधारणतः कोई पता नहीं होता। दूसरे तक हम कभी—कभी झांक पाते हैं, तीसरे तक हम कभी झांक नहीं पाते।

ध्यान का विज्ञान कहता है कि पहला तल बोलने का है, दूसरा तल सोचने का है — तीसरा तल दर्शन का है। पश्यन्ति का अर्थ है देखना। जहां शब्द देखे जाते हैं। वेद के ऋषि कहते हैं कि हमने ज्ञान देखा, सुना नहीं। मूसा कहते हैं कि मेरे सामने **'टेन कमांडेंट्स'** प्रकट हुए, दिखाई पड़े, मैंने सुना नहीं। यह तीसरे तल की बात है, जहां विचार दिखाई देते हैं, सुनाई नहीं देते। तीसरा तल भी ध्यान के हिसाब से मन का आखिरी तल नहीं। एक चौथा तल है, जिसे ध्यान का विज्ञान 'परा' कहता है। वहां विचार दिखाई भी नहीं पड़ते, सुनाई भी नहीं पड़ते और जब कोई व्यक्ति देखने व सुनने से नीचे उतर जाता है, तब उस चौथे तल का पता चलता है। और उस चौथे तल के पार जो जगत है, वह ध्यान का जगत है।

चार हमारी पर्तें हैं, इन चारों दीवारों के भीतर आत्मा है। हम बाहर की पर्तों के भी, दीवार के बाहर ही जीते हैं। पूरे जीवन शब्दों की पर्त के साथ जीते हैं। और स्मरण नहीं आता कि खजाने बाहर नहीं हैं —बाहर सिर्फ रास्तों की धूल है।

आनंद बाहर नहीं है। बाहर आनंद की धुन भी सुनाई पड़ जाये तो बहुत है। जीवन का सब कुछ भीतर है — भीतर गहरे अंधेरे में दबा हुआ। ध्यान वहां तक पहुंचने का मार्ग है। —— **आचार्य रजनीश ओशो**

-: शरीर में आत्मा का वास :-

यह शरीर मेरा है, यह कहने वाला कौन है? जिसका इस शरीर से संबंध है, वह कौन सा तत्व है? जो कहता है कि मेरा मन नहीं मानता, मेरी बुद्धि अच्छी है, मेरे हाथ—पांव दुष्ट हैं, आदि आदि। क्या यह कहने वाला ही आत्मा है? यह आत्मा ारीर में कहां रहती है, इसे जानने के प्रयास में ही सभी दर्शनों का अभ्युदय हुआ, परंतु मिश्रित रूप में यह कोई नहीं कह पाया कि आत्मा ारीर में अमुक जगह पर रहती है।

सर्वसाधारण मानता है कि जिसमें आत्मा है, वह चेतन है तथा जिसमें आत्मा नहीं है, वह जड़ है। परंतु तात्विक दृष्टि से विचार करें तो यह एक भ्रान्त धारणा है। आत्म सत्ता जड़—चेतन की भिजक नहीं है, क्योंकि **सर्व खल्विदं ब्रह्म** के अनुसार आत्मा जड़—चेतन दोनों में स्थित होती है। यदि कोई भी पदार्थ किसी आकार अर्थात् शरीर विशेष में है, तो अवश्य उसमें आत्मा का वास होगा। बिना आत्मा के किसी भी भौतिक पदार्थ में परिवर्तन (गति) संभव नहीं है। आत्मसत्ता के लिए भौतिक सत्ता का होना नितांत आवश्यक है। बिना भौतिक के आत्म सत्ता

को नहीं जाना जा सकता। जैसे बिना किसी पंखे आदि उपकरण के विद्युत का भान होना कठिन है, उसी प्रकार भौतिक सत्ता के बिना आत्मा को जानना अति कठिन है।

आत्मा का वास संपूर्ण शरीर में स्वीकार किया गया है। शरीर आत्मा का अधिकरण है। बिना आत्मा के इन्द्रियाँ, मन आदि कोई भी अपना कार्य संपादित नहीं कर सकता। शरीर इन्द्रियों का गांव है और इस गांव का अधिपति मन है। मन आत्मा का अंतः करण है। मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार आत्मा के अंतःकरण हैं, इन्हीं के माध्यम से यह स्थूल शरीर इन्द्रियों की सहायता से कर्ता के अनुरूप कार्य का संपादन करता है। दार्शनिक एवं वैज्ञानिक निरंतर प्रयास में लगे हैं कि शरीर में आत्मा के स्थान का ज्ञान हो जाए। वेदांत दर्शन के ग्रंथ पंचदशी में कहा गया है कि आत्मा इस शरीर में पांव से सिर तक सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी जागरण के समय नेत्रों में, स्वप्न के समय कंठ में तथा सुषुप्ति के समय हृदय में वास करती है। —— **डॉ देवी शरण प्रसाद**

-: विपश्यना ध्यान से रोग मुक्ति :-

प्रश्न उठता है कि आध्यात्मिक साधना क्या रोगों को ठीक करने में मदद कर सकती है? उत्तर है हाँ। अनेक चिकित्सा पद्धतियों की मान्यता है कि ईर्ष्या, द्वेष, भय के बाहुल्य से तनाव बढ़ता है और कम उम्र में ही बुढ़ापे के लक्षण आ जाते हैं। क्रोध, तनाव, कुण्ठा एवं शोक का संबंध हार्ट अटैक, उच्च रक्तचाप एवं पेप्टिक अल्सर जैसी बीमारियों से है। ब्लड प्रेशर कालांतर में फालिज का कारण बनता है। भय, क्रोध एवं बराबर तिरस्कृत होने आदि से पाचन क्रिया खराब होती है। आतुरता आई. बी. एस. (संग्रहणी) की जनक है। अशांति और व्याकुलता मधुमेह को बढ़ाते हैं और उनके जनक भी हो सकते हैं। तनाव, उदासी और अनिद्रा तो सर्वमान्य मन के रोग हैं ही। इन्हें दूर करने के लिए मनुष्य नशे का सहारा लेने लगता है और उसे उससे भी बड़ा रोग नशे का लग जाता है।

आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति का भी यही मानना है कि मन के विकार मनोजन्य शारीरिक रोग उत्पन्न करते हैं और उनका संवर्धन करते हैं। जब–जब मन शांत होता है, विकाररहित होता है, अपने–आप रोग घटने लगते हैं। उनमें प्रमुख हैं –

1. उदर रोग – गैस, पेट में जलन, पेट में घाव, अल्सरेटिक कोलाइटिस, बार–बार शौच जाना आदि
2. फेफड़े के रोग – दमा
3. हृदय रोग – उच्च रक्तचाप, दिल का दौरा
4. मस्ति क रोग – अर्धकपाड़ी का दर्द, शरीर में झनझनाहट आदि
5. मनोरोग – हिस्टीरिया, एक्जाइटी न्यूरोसिस, डिप्रेशन आदि
6. मधुमेह – स्टेथ्स मधुमेह
7. चर्मरोग – एक्जिमा, सोराइसेस, न्योरा डरमेटाइटिस आदि

चूंकि इतनी भिन्न दिखनेवाली बीमारियों की जड़ें मन के मलिन होने एवं विकारयुक्त होने से हैं जिन्हें निर्मूल करने में आध्यात्मिक साधना ही मदद कर सकती हैं। **'विपश्यना'** इन भिन्न दिखने वाले रोगों को ठीक करती है। मन को विकाररहित बनाकर एवं निर्मलता लाकर। **'विपश्यना'** साधना में पहले सांस पर मन एकाग्र करना बताया जाता है। हम सभी जानते हैं कि मन और सांस का गहरा संबंध है। भय, क्रोध आदि विकार जगने पर सांस तेज चलने लगती है और इनके समाप्त होने पर फिर अपनी साधारण धीमि गति पर वापस आ जाती है। सांस के अवलम्बन पर, जब मन केंद्रित हो जाता है तो उस क्षण मन विकारहित होता है। धीरे–धीरे सांस पर एकाग्र होने का समय बढ़ता जाता है और मन की निर्मलता बढ़ती जाती है, जिसका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है। देखा गया है कि हार्ट अटैक के रोगी यदि सांस पर ध्यान केंद्रित करें तो उनकी धमनियों में चर्बी कम होने लगती है और उनका अवरोध शनैः–शनैः समाप्त होने लगता है। कम दवाओं पर ही बगैर ऑपरेशन कराए ऐसा रोगी बिना किसी तकलीफ के रह सकता है। अमेरिका में डॉ० डीन आर्निश ने जो अमेरिकी रा ट्रपति के चिकित्सक थे, इस पर काफी सफल आजमाइश की है। सांस पर मन केंद्रित करने **आना पान सति** को अन्य

उपचार के साथ जोड़ने में उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली। आज संसार भर में दिल के दौरे के इलाज में 'डीन आर्निश' प्रोग्राम की चर्चा है और उसके सफल प्रयोग हो रहे हैं।

संसार में मन की एकाग्रता हमारे परित चित्त–बाह्य चित्त को शुद्ध करती है। इसके बावजूद विकारों की जड़ें नहीं निकल पातीं। यह उसी प्रकार होता है जैसे गंदे पानी में फिटकरी डाल दें तो गंदगी नीचे बैठ जाएगी और पानी साफ हो जाएगा। यदि किसी कारण पानी में फिर हलचल हो जाए तो गंदगी सारे पानी में फिर आ जाएगी। इसी तरह समय और परिस्थिति आने पर विकार फिर सिर उठाने लगते हैं, क्योंकि विकार की जड़ें हमारे अंतः चित्त में हैं, जो शरीर में होने वाली रासायनिक, विद्युतीय एवं चुम्बकीय क्रियाओं को बराबर जानती रहती है और अंधी प्रतिक्रिया करती हैं। यही अंधी प्रतिक्रिया हमारे सारे विकारों की जड़ है। हम इस शरीर पर होने वाले भिन्न जैव रासायनिक क्रियाओं को संवेदना के माध्यम से जानते हैं। संवेदना सदैव होती रहती है और हमारा अंतः चित्त जब एकाग्र होकर रीर के किसी भी भाग से संपर्क करता है, संवेदाएं महसूस होने लगती है। यदि हम इन संवेदनाओं के प्रति सजग नहीं हैं, तो हम अंधेरे में ही हैं। हमारा स्वभाव है कि सुखद संवेदना हो तो उसे कायम रखने की अथवा बढ़ाने की प्रतिक्रिया करते हैं। सुखद संवेदनाओं के साथ राग जागते हैं और दुःखद के साथ द्वेष। जब हम यह प्रज्ञापूर्वक जानने लगे एवं संवेदनाओं के प्रति सजग रहें और चित्त को समता में स्थापित कर कोई प्रतिक्रिया न करें तो स्वयं ही चित्त से विकार की जड़ें समाप्त होने लगती हैं। जैसे–जैसे साक्षी भाव जागृत होता है तो भोक्ता भाव अपने आप समाप्त हो तो चला जाता है। यह देखा गया है कि जब भी साक्षी भाव आ रहा है तो शरीर की कोशिकाओं में आसवों में भी परिवर्तन होता है। इसी प्रक्रिया से विकारों की जड़ें निकलने लगती हैं और मनोजन्य रोगों से छुटकारा मिलने लगता है।

नशीले पदार्थों का सेवन सारे संसार में एक क्षणिक सुख, उत्तेजना या गम कम करने के लिए बढ़ रहा है। नशीले पदार्थ चाहे पान, जर्दा या पान मसाला हो चाहे गुटखा, खैनी या गुल हों चाहे सिगरेट, बीड़ी, सिगार या हुक्का हो चाहे भांग, गांजा, शराब या अफीम हो, चाहे मेण्ड्रेक्स, कोकीन, पेथिडीन हो, चाहे ट्रन्क्वाइलर हो, इन सबका सेवन धीरे–धीरे लत बन जाता है। फिर इनके बिना रहा नहीं जाता। 'तलब' हुई कि नशा करने लगे और उसमें डूबते ही गए। नशा करने के लिए द्रव्य न होने पर व्यक्ति जघन्य अपराध करके भी अपनी तलब पूरी करता है। नशे के शिकार ऐसे व्यक्तियों में देखा गया है कि वह इनका सेवन इसलिए करते हैं कि नशे के द्वारा रीर में एक प्रकार की संवेदना जगती है, जिसकी उन्हें चाह होती है। यही तलब है। यह तलब नशीले पदार्थों के प्रभाव से शरीर की कोशिकाओं में पैदा हुए द्रव्य रसायन से होती है जो संवेदना के रूप में शरीर पर प्रकट होती है। यदि तलब के समय रीर पर होने वाली संवेदनाओं को साक्षी भाव से देखें और चाह की प्रतिक्रिया न करें तो नशे की आदत धीरे से छूट जाती है। विपश्यना का प्रयोग पश्चिम आस्ट्रेलिया में क्रेयन हाउस में नशे की लत से छुटकारा पाने में बड़ी सफलता पूर्वक किया जा रहा है। इसके सारे सलाहकार एवं कार्यकर्ता भूतपूर्व नशेड़ी हैं, जो विपश्यना साधना कर नशे की आदत छोड़ चुके हैं और अब नशेड़ियों के सम्मुख स्वयं आदर्श प्रस्तुत करते हुए उनकी आदत छुड़ाने में मदद करते हैं।

विपश्यना द्वारा मन निर्मल और शांत होता है तो मन में सकारात्मक प्रवृति ही जागती है। सकारात्मक प्रवृति असाध्य रोगों के प्रति साक्षी भाव जगाती है, जिससे रोगों से होनेवाली शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा कम होती है। रोगों को बर्दाश्त करने की क्षमता बढ़ती है। रोगी के चेहरे पर सदैव शांति और मुस्कुराहट रहती है। हाय रे, मरा रे जैसे शब्द उसकी वाणी से नहीं निकलते। रोगों पर विजय तो इस साधना का बहुत छोटा सा लाभ है। असल तो यह समस्याओं से अभिमुख होकर सुख–शांति का जीवन जीने की कला सिखाती है। मृत्यु को हंसते–हंसते वरण करने की क्षमता प्रदान करती है और अंततोगत्वा समस्त रोगों से भी भयंकर रोग भवचक्र से मुक्ति दिलानेतक की सारी सीढ़ियाँ पार करा सकती है। —— **डॉ० प्रेमनारायण सोमानी** (5 मई 2001 शनिवार **'आज'** समाचार पत्र से साभार)

-: चित्त को विकार मुक्त करे विपश्यना :-

साधना का लक्ष्य चित्त को पूर्ण रूप से निर्मल करना है, शुद्ध करना है। इसका पहला कदम चित्त को एकाग्र करना है। लक्ष्य की ओर जाने की पहली सीढ़ी है। इस साधना के द्वारा हम सुख तथा शांतिपूर्वक जीवन जीने की कला सीख सकते हैं।

हम अनुभव करते हैं कि हमारे जीवन में कितना तनाव है, खिंचवा है, बेचैनी है, अशांति है, व्याकुलता है। हमारे पास सब साधन हों, सम्पत्ति हो तो भी हम दुखी रहते हैं। इनका अभाव है तो दुखी हैं ही। मन का यह रोग सार्वजनीन है, सार्वकालिक है, सार्वदेशिक है। यदि हम मन के इस रोग का कारण जान लें तो इसे दूर अवश्य कर सकेंगे। रोग का कारण मन का विकार है। यदि हमारा मन इन विकारों से मुक्त हो जाए, शुद्ध हो जाए, निर्मल हो जाए तो हमदुःख से, अशांति से, बेचैनी से अपने आप दूर हो जायेंगे। चित्त के निर्मल होने पर किसी के प्रति ईर्ष्या या द्वेष नहीं जागेगा। निर्मल चित्त प्यार से, करुणा से, मुदिता से, समता से भर उठेगा। हमारा मन सदा संतुलित रहेगा। यही कल्याण का मार्ग है।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें सांस को देखना होता है। किस प्रकार हमारा सांस आ रहा है, जा रहा है। केवल यही देखना होता है। सांस का हमारे विकारों से गहरा संबंध है। जब—जब मन में क्रोध जागे, भय जागेगा हमारे सांस की गति तेज हो जाएगी। जैसे ही विकार दूर हो जाएगा, सांस फिर अपने—आप धीमा और अपनी साधारण गति से चलने लगेगा। सांस को देखते—देखते हम अपने विकारों को देख सकेंगे। ज्यों ही हमने विकारों को देखना शुरू किया, चित्त की सफाई का काम शुरू हो गया। विकारों को जानने के लिए सांस का माध्यम अत्यंत महत्व का हैं। इसके साथ यदि हम किसी नाम, मंत्र या रूप को जोड़ देते तो सांस अपनी जगह रह जाता है और मन उस शब्द की गूंज में, उसका बार—बार उच्चारण करने में या उस रूप की कल्पना में डूब जाता है। मन एकाग्र तो हो जाता है, शांति भी मिलती है, लेकिन हम अपने विकारों तक नहीं पहुंच पाते। यदि हमें अपने विकारों को देखना है, मन की अन्तरतम गहराइयों तक पहुंचना है, जहां हमारे विकार एकत्र हैं, संग्रहीत हैं, तो हमें बीच में कोई दीवार नहीं खड़ी करनी है। विकारों से सीधा संपर्क आवश्यक है। हमारे विभिन्न बाहरी अंग— हाथ, पैर व आंख आदि— हमारी इच्छा के अनुसार काम करते हैं, लेकिन शरीर के भीतर के जो अंग हैं — फेफड़े, हृदय आदि हमारे आदेश का इंतजार नहीं करते। निरंतर प्रकृति के नियम के अनुसार काम करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त हमारा शरीर जो छोटे—छोटे परमाणुओं से, जीव कोषों से बना है, उनमें कुछ—न—कुछ खटपट होती ही रहती है। समग्र शरीर—पिंड में कुछ—न—कुछ जैव रासायनिक प्रतिक्रिया, विद्युत चुम्बकीय प्रतिक्रिया निरंतर होती ही रहती है। वह सच्चाई अनुभूति से जानेंगे।

शरीर के बारे में सुना है, शास्त्रों में पढ़ा है कि यह नश्वर है, भंगुर है। मन के बारे में भी सुना है कि यह चंचल है, चपल है, लेकिन अनुभूति के स्तर पर यह बात नहीं जानी। इसलिए शरीर और मन के प्रति बड़ी आसक्ति है। यह आसक्ति केवल बौद्धिक—स्तर की जानकारी से टूटने वाली नहीं है। इसलिए हमारे यहाँ सत्य के साक्षात्कार को इतना महत्व दिया गया। सत्य को ही ईश्वर माना गया है। सत्य का साक्षात्कार स्थूल से ही आरंभ होता है और सूक्ष्म—से—सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम होता हुआ परम सत्य तक पहुंच जाता है। यदि हमें परम सत्य का साक्षात्कार करना है, जो अवस्था इंद्रियातीत है, भावातीत है, लोकातीत है, वहां तक पहुंचना है, तो हमें इंद्रिय जगत के क्षेत्र की स्वयं यात्रा करके अनुभूतियों के क्षेत्र से गुजरना ही पड़ेगा।

साधना के अभ्यास द्वारा आरंभ हुआ वर्तमान में जीने का कार्य। मन को सिखाने लगे कि देखे इस सांस को — जो आ रहा या जा रहा है। यह इस क्षण की घटना, इस क्षण की सच्चाई है। मन को सिखाने लगे कि भूतकाल की स्मृतियों और भवि य की आकांक्षाओं से हटकर वर्तमान में रहना सीखे। ज्यों ही वर्तमान में रहना आने लगेगा, बहुत से रहस्य सामने आयेंगे। जैसे—जैसे हम स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलेंगे, ज्ञात से अज्ञात को भी जानने लगेंगे। इस प्रयत्न में सांस एक कड़ी का काम करेगा, एक पुल का काम करेगा।

यह सारा अभ्यास हमें चित्त की निर्मलता की ओर ले जाने वाला है। इसमें पहला कदम चित्त को एकाग्र करने का है। यह कदम भी थोड़ा—बहुत मैल उतरने वाला होना ही चाहिए। कैसे? हम केवल सांस को देख रहे हैं, जान रहे हैं, तो हमारा संबंध भूतकाल की स्मृतियों और भवि य की कल्पनाओं से टूट रहा है। एक तरह से राग—और द्वे ा से टूट रहा है। यथाभूत सांस अपने स्वभाव से चल रहा है, उसे ाांति से दृढता से देख रहे हैं। उस क्षण हम मोह से भी दूर हैं, क्योंकि किसी कल्पना में नहीं उलझे हैं। दिन भर के अभ्यास में कुछ क्षण ऐसे आते ही हैं, जब हम केवल सांस को देख रहे होते हैं। ये क्षण बड़े महत्व के हैं। उन क्षणों का चित्त निर्मल हो जाता है।

प्रस्तुति :— श्री अभिषेक कुमार, (मंत्र, तंत्र यंत्र विशेषज्ञ, महाविद्याओं के सिद्ध साधक एवं शक्ति सिद्धांत के व्याख्याता)
परमपूज्य गुरूदेव श्री निखिलेश्वरानंद जी महाराज के परम प्रिय शिष्य, शक्ति अनुसंधान केंद्र, मो0:— हजारी, नून का चौराहा, पटना सिटी.
Mob:- 9852208378, 9525719407. E-mail:- shaktianusandhankendra@gmail.com

इसी प्रकार एक रहस्य और प्रकट होता है। जब हमारे अंतरतम में संग्रहीत विकार समूह से निर्मल चित्त का संपर्क होता है, तो बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया होती है। एक तूफान सा उठता है, ज्वालामुखी सा फूटता है। मन और शरीर का गहरा संबंध है। अतः यह प्रतिक्रिया शरीर में प्रकट होती है। किसी का पांव टूटने लगता है, तो किसी की कमर फटने लगती है। किसी का सिर चकराता है तो किसी का जी घबराता है। किसी का भाग जाने का मन करता है, तो किसी को नींद ही आने लगती है। यह सब क्यों होता है? हमारा अभ्यास चित्त को अपने स्वभाव से पलटने का प्रयास है। यह प्रतिक्रिया इस प्रयास के विरूद्ध होती है। इन पीड़ाओं का बड़ा कारण मन की विपरीत प्रतिक्रिया का शरीर पर प्रकटीकरण है। जैसे–जैसे हम अपने अभ्यास में पुष्ट होते जाएंगे, ये प्रतिक्रियायें कम होने लगेंगी। धीरे–धीरे हमने अपने मन में जो विकार इकट्ठे कर रखे हैं, उनका शमन होने लगेगा। उन्हें धोते चले जाएंगे, साफ करते चले जाएंगे। यदि हम दृढता के साथ साधना में लगे रहेंगे, तो इन प्रतिक्रियाओं को जड़ से उखाड़ फेंकेंगे। चित्त स्वभाव से निर्मल हो जाएगा। हमें जीना आ जाएगा। सुख में जीएंगे, शांति से जीएंगे। हम अपने भीतर शांति का अनुभव करेंगे और जिन लोगों के साथ हमारा संपर्क होगा, उन्हें भी शांत और सुखी करेंगे। यह विपश्यना साधना का लक्ष्य है। -- **डॉ. लाल सिंह** (24 जनवरी 2006 मंगलवार के दैनिक जागरण से साभार)

-: कोई ध्यानी ही सुन सकता है गगन की आवाज झीनी-झीनी :-

संभूति की एक प्रसिद्ध कथा है। वह वृक्ष की शीतल छांव में शून्य अवस्था में बैठा हुआ था। अकस्मात उसने चकित होकर देखा कि चारों तरफ आकाश से उसके लिए फूल बरस रहे थे। देवताओं ने प्रकट होकर कहा–चकित मत होओ। तुमने आज शून्यता पर हमें सबसे बड़ा उपदेश दिया है। हम सब उसी का उत्सव मना रहे हैं और तुम्हारे सम्मान में तुम्हारे ऊपर फूल बरसा रहे हैं। संभूति ने कहा–मगर मैं तो कुछ बोला ही नहीं। देवताओं ने उत्तर दिया कि, हाँ यह सत्य है कि न तुमने कुछ बोला और न ही हमने कुछ सुना–यही तो शून्ता पर दिया गया सबसे बड़ा उपदेश.......।' जिस प्रकार जीवन का अंतिम सत्य है मृत्यु, उसी प्रकार वाणी का अंतिम सत्य है मौन। मौन में खोना, निर्विकार होना ही सबसे बड़ा ध्यान है। ध्यान अंतर्यात्रा है, ध्यान अग्नि है। जैसे अग्नि सब खोट तत्वों को जला देती है, ऐसे ही ध्यान हमारे अंतर्मन की मैल को जलाता है। महाशून्य में विलीनता ही ध्यान की मंजिल है और हमारे जीवन का लक्ष्य। बीज की मात्रा वृक्ष तक है, नदी की यात्रा सागर तक है मनुष्य की यात्रा परमात्मा तक। महावीर ने कहा कि मूल धर्म है–ध्यान। जिसने ध्यान साध लिया, मानो सब साध लिया। ध्यान एक अनुभूति है, जो स्वयं होती है। ध्यान एक घटना है, जो स्वयं घटित होती है।

ध्यान एक सत्य है, जो स्वयं अवतरित होता है। सत्य वह है, जो मन, वाणी, विचार और इन्द्रियों से परे है। शब्दों की पहुंच तक सत्य नहीं है। शब्दों में कहते ही सत्य–सत्य नहीं रहता। ध्यान में आगे बढ़ना ही होता है, वापस लौटने का मार्ग नहीं होता। अगर किन्हीं कारणवश एक जन्म में ध्यान की अंतर्यात्रा रूक जाए, तो उसके आगे की यात्रा हमारे अगले जन्म में प्रारम्भ होती है। हमारी जीवन ऊर्जा जब तक अपनी मंजिल, अपने स्रोत तक नहीं पहुंच जाती, तब तक विवश होकर हमें बार–बार जन्म लेना ही पड़ता है। ध्यान–आज पूरी दुनिया के लिए एक प्रबल चुम्बकीय आकर्षण का केंद्र बना हुआ है। इसके सघन जीवन्त छांव मे निरंतर नये–नये लोग आत्मरूपांतरण की क्रियायें सीखने में जुटे हुए हैं। ध्यान की अतल गहराइयों में डूबने वाले साधकों को हर सुबह का सूरज 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई' के संदेश के साथ दस्तक देता है। उष्मा को संजो रखने को प्रतीक्षारत सभी साधक ध्यान मंदिर में प्रवेश करके पूरे दिन सूर्य के स्वर्णिम प्रकाश से अपने अंतरस को जोड़ते हैं। पर अफसोस है कि ज्ञानी–ध्यानियों, सिद्धसाधक संतों की इस तपोभूमि पर जिसने हमेशा ही आत्मज्ञान, अंतस्प्रज्ञा और आत्यंतिक शिखरों को छुआ है, आज ध्यान के आकाश में उड़ने में वाला चेतना के स्वर्णिम पंखों वाला पक्षी स्वतः अपनी पहचान भूल गया है। भारत को उसकी इस अंतस संपदा का बोध दिलाया जा सकता है। पश्चिम को यह स्मरण नहीं दिलाया जा सकता, क्योंकि उसके पास यह संपदा कभी थी ही नहीं। वहाँ कभी–कभार कोई इक्का–दुक्का बुद्ध पुरुष अवश्य हुआ, लेकिन उनकी भी अगर खोज की जाय तो पाएंगे कि यह विरासत उन्हें भारत से ही मिली थी। यही वह देश है, जहाँ विश्व के तमाम प्रतिभावान लोग ध्यान सीखने आते थे। तक्षशिला और नालंदा इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। अमीर खुसरो ईरान से चलकर अपने सद्गुरु निजामुद्दीन औलिया के पास भारत आया था, क्योंकि उसके अंदर इस सत्य को पाने की प्यास थी।

वस्तुतः परमात्मा हर व्यक्ति को ध्यान के साथ–ही पैदा करता है। जैसे बाहर सूरज चमक रहा हो और हमारे द्वार बंद हो, जैसे खजाना सामने पड़ा हो ओर हम आँखें बंद किए बैठे हों। बस, इतनी सी ही कठिनाई है। ध्यान की सारी ही विधियाँ आखें कैसे खुलें, बस इस बात का उपाय करती हैं। ध्यान परमात्मा के खजाने को खोलने की चाबी है।

'जागो रे जिन जागना, अब जागन की बार। फिर क्या जागे नानका, जब सोने की पांव पसार।'

ध्यान की समस्त क्रियायें किसी न किसी संबुद्ध के दिशा–निर्देशन में ही होनी चाहिए। एक संबुद्ध ही शिष्य/साधक के अंदर ध्यान की अलख जगाता है। वह साधक को झकझोरकर ध्यान के दीये को प्रदीप्त करता है। ध्यान में व्यक्ति अंतर्मुखी होता है। वह संसार रूपी परिधि से मन रूपी केंद्र की ओर आता है। ध्यानी पुरुष हर कार्य ध्यान से करता है, सृजगता उसके जीवन का अंग बन जाती है। ध्यान क्रिया भी है और अक्रिया भी। ध्यान एक सरल और महानतम यौगिक अभ्यास है। ध्यान से ऐसी ओजशक्ति उत्पन्न होती है, जो कार्यक्षमता, आत्मबल एवं शारीरिक वृद्धि में अत्यंत सहायक सिद्ध होती है। ध्यान तामसिक वृत्तियों को सात्विकता में रूपांतरित भी करता है।

ध्यान निर्विषय :– मन का विषय रहित होना ही ध्यान है। ध्यान तो जीवन में हर पल, हर क्षण का होना चाहिए। ध्यान ही हमारा अंतिम लक्ष्य, हमारी अंतिम मंजिल होनी चाहिए। तभी हमारे मन में सद्भावनाओं के फूल उत्पन्न हो सकेंगे। हमारा जीवन आनंदित हो सकेगा।

—— **शंभूनाथ पाण्डेय** (दिनांक 15 अप्रैल 2008 के दैनिक जागरण समाचार पत्र में)

-: भगवत कृपा के लिए यज्ञ सबसे सरल विधान :-

वेद शास्त्रों के अनुसार यज्ञ करके भगवान की अनुकंपा बहुत–ही सरलता से प्राप्त की जा सकती है। भगवान यज्ञ करने वालों पर जल्द प्रसन्न हो जाते हैं। अब प्रश्न उठता है कि किस यज्ञ से भगवान जल्द प्रसन्न हो जाते हैं? इसका समाधान करते हुए शास्त्र कहते हैं, जिससे अपना, समाज का और विश्व का भला होता हो, ऐसे यज्ञ करने से। आमतौर पर यह माना जाता है कि हवन करने से भगवान जल्द प्रसन्न हो जाते हैं। यह मान्यता सही ही नहीं, शास्त्र के अनुसार भी ठीक है। जो दंपत्ति रोजाना बड़े श्रद्धा भाव से परिवार सहित यज्ञ करते हैं, उनकी सारी कामनायें पूरी होती ही हैं। वेद में भगवान कहते हैं कि यज्ञ कुण्ड में डाली गयी हवन सामग्री, घी, मिष्ठान और श्रद्धा–भक्ति सभी मिलकर यजमान की हर कामना पूरी करते हैं। भागवत पुराण के अनुसार प्रतिदिन सुबह उठकर सबसे पहले सूर्य देवता को प्रणाम करना चाहिए। फिर गाय के गोबर से बड़ी श्रद्धा के साथ उस जगह को लीपना चाहिए, जहाँ भगवान को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ–कुण्ड रखा हो। फिर गाय का घी और अक्षत लेकर परिवार सहित यश्र करना चाहिए।

वेद में कहा गया है इस ब्रह्माण्ड की धूरी यज्ञ है, अर्थात् यज्ञ पर ही यह सारी दुनिया टिकी हुई है। इसलिए भगवान भी यज्ञ करने वालों को पसंद करते हैं। किन यज्ञ करने वालों को भगवान अपना आशीर्वाद प्रदान करते हैं? इसका समाधान यह है कि जो विश्व कल्याण के लिए कार्य करते हैं। मतलब विश्व का कल्याण करना भी यज्ञ है। इस यज्ञ में हम सबका योगदान अवश्य होना चाहिए। हम जिस लायक हैं, उसके अनुसार–ही समाज कल्याण में अपना योगदान दे सकते हैं। हाँ इतना अवश्य ध्यान दें कि यदि किसी की भलाई नहीं कर सकते तो अहित भी न करें। यह पाप कर्म है। यह अधर्म है। यह भगवान के प्रति अपराध है। यज्ञ की प्रतिष्ठा से इहलोक सुधरता ही है, परलोक भी सुधर जाता है। तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार हमें यज्ञ की ज्योति कभी बुझने नहीं देनी चाहिए। यश्र की ज्योति जलाने से एक लोक ही नहीं, अपितु तीनों लोकों का कल्याण होता है। इससे ही परमपिता की कृपा मिलती है। इससे ही परमानंद का सुख मिलता है और यही मोक्ष को दिलाने वाला होता है। शास्त्र कहते हैं यज्ञ तो ऐसा महान कार्य है, जिससे पिछली सात पीढ़ियों का उद्धार होता है। इसलिए श्राद्ध के समय यज्ञ का विधान किया गया है। अग्नि पुराण में कहा गया है जो मनुष्य श्रद्धा के साथ अपने माता–पिता की सेवा करता है और उनको हर–तरह से खुश रखता है, वह स्वर्ग को प्राप्त होता है। पुराणों में कई ऐसे प्रसंगों का वर्णन है, जिसमें यह बताया गया है कि माता–पिता की सेवा करने से उन लोगों का भी उद्धार हो गया, जो आस्तिक नहीं थे।

कहने का भाव यह है कि माता–पिता की सेवा करना भी एक पुण्य का कार्य है। वेदों में नित्य पाँच यज्ञ करने की प्रेरणा दी गयी है। ये हैं–ब्रह्म यज्ञ, अर्थात रोजाना संध्या करना और भगवान को प्रसन्न रखना। दूसरा है देव यज्ञ। यह देव यज्ञ हवन कहलाता है। तीसरा है अतिथि यज्ञ। चौथा है पितृयज्ञ। ये यज्ञ करने वाले मनुष्य ही इस मानव समाज के आधार हैं। इन पर ही यह धरती टिकी हुई है। इनसे ही अमंगल शक्तियाँ दूर भागती हैं। कहने का भाव यह है कि यदि दुनिया को अमंगल से बचाना है तो सबको मिलकर बड़े श्रद्धा भाव से यज्ञ करना होगा। आज परिवार, समाज और प्रकृति में तरह–तरह की समस्यायें बढ़ रही हैं। इनको यदि रोकना है तो हर परिवार में श्रद्धा और भक्ति के साथ यज्ञ होने चाहिए। इन बातों को ध्यान में रखते हुए ही हमारे वैदिक ऋषि–मुनियों ने पंच यज्ञों का विधान और महत्व बताया है। वेद भगवान कहते हैं– हे मानव! यदि दुरित से बचना चाहते हो तो मिलकर यज्ञ करो।

भगवान कृष्ण भी इसी बात को गीता में कहते हैं कि यज्ञ से बढ़कर और कोई ऐसा सरल रास्ता नहीं है, जिससे तुम हमें प्राप्त कर सको। —— **यज्ञ शरण कुलश्रेष्ठ**

—: ब्रह्म का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है ओम् (ॐ) :—

श्रीरामकृष्ण का कथन है कि वेदों का लय गायत्री में और गायत्री का लय प्रणव (ओम्–ॐ) में होता है। और प्रणव का समाधि या अतिचेतनावस्था में अपने आप विलय हो जाता है। गायत्री एवं ओम् के अंतर्संबंध पर रामकृष्ण संघ के संन्यासी स्वामी घनानंद के एक आलेख का अंश –

पुरातन काल में हिन्दू सूर्य के प्रकाश में, मानव के नेत्रों की ज्योति में तथा चेतना के केन्द्र माने जाने वाले हृदय में, अभिव्यक्त ब्रह्म की उपासना किया करते थे। गायत्री उपासना सूर्य के प्रकाश में अभिव्यक्त ब्रह्म की उपासना है। उन्होंने सूर्य को प्रकाश और जीवन के चरम उत्स के रूप में स्वीकार किया, क्योंकि सूर्य के बिना पृथ्वी पर समस्त जीवन का लोप हो जाएगा और सारा संसार अंधकार में डूब जाएगा।

गायत्री मंत्र की दीक्षा प्राप्त हिन्दू युवक को सूर्योदय, सूर्यास्त और मध्याह्न के समय सूर्य के उज्जवल प्रकाश पर मन को एकाग्र करने को कहा जाता है। उसके बाद उसे कहा जाता है कि वह सूर्य के प्रकाश के स्रोत अथवा जीवन का चिंतन करे। इससे वह स्वयं के भीतर विद्यमान प्राण अथवा प्रज्ञालोक के स्रोत तक पहुंचता है, जिसके बिना वह सूर्य के आलोक या उस प्रकाश की प्राण सत्ता का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। अंतिम अवस्था में उसे अपने भीतर प्रकाश (जीवन) के और सूर्य में विद्यमान प्रकाश (जीवन) के एकत्व पर ध्यान करने को कहा जाता है। अर्थात् स्वयं में विद्यमान एकमात्र सत्ता व समग्र ब्रह्माण्ड की एकमात्र सत्ता के एकत्व पर ध्यान करने को कहा जाता है। अंततः वह इसका साक्षात्कार करता है। ज्योंही वह अपनी आत्मा का साक्षात्कार करता है, त्योंही ब्रह्म या परमात्मा के साथ उसके एकत्व की अनुभूति अपने आप हो जाती है।

गायत्री मंत्र एक अत्यंत उदात्त वैदिक प्रार्थना है। इसक अर्थ है– हम तीनों लोकों के स्रष्टा परमात्मा के ज्योतिर्मय स्वरूप का ध्यान करते हैं। वे हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में लगाएं। गायत्री मंत्र की आवृत्ति के पहले 'भूः भुवः स्वः' इन तीन व्याहृतियों का सदा उच्चारण किया जाना चाहिए और इनके पूर्व 'ओम्' का उच्चारण होना चाहिए। भूः का अर्थ है पृथ्वी। भुवः का अर्थ है अंतरिक्ष लोक और स्वः का अर्थ है स्वर्गलोक। इनकी रचना ईश्वर कहनाने वाली दैवी शक्ति अथवा सगुण ब्रह्म ने की है। इन ईश्वर निर्मित तीन लोकों के चिंतन से जगत स्रष्टा ईश्वर का स्मरण हो जाता है।

कहते है कि गायत्री का लय प्रणव (ओम्) में होता है। ओम् शब्द क्या है ? ओम्– अ, उ और म, इन तीन अक्षरों से मिलकर बना है और प्रत्येक चेतना की एक अवस्था विशेष का प्रतीक है। लेकिन अकेला एकाक्षर ओम् चतुर्थ या तुरीय या ब्रह्म का प्रतीक है। अतः पूर्ण ओम् ब्रह्म का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है। जाग्रत अवस्था का मानव, स्वप्नावस्था का मानव तथा सुषुप्तावस्था का मानव, ये तीनों एक ही आत्मा की तीन अभिव्यक्तियाँ हैं। इस प्रकार आंतरिक स्तर पर चेतना की तीनों अवस्थाओं के बीच एक एकत्व का बोध विद्यमान रहता है। यह एकत्व–बोध आत्मा नहीं है, लेकिन वह उसकी मानव द्वारा तुरीय नामक विशुद्ध चैतन्य के रूप में अनुभूति की संभावना का संकेत प्रदान करता है। वस्तुतः तुरीय कोई अवस्था नहीं है, क्योंकि वह अनंत है। लेकिन उसे बोलचाल की भाषा में चतुर्थ या अतीन्द्रिय अवस्था कहा जाता है। यही बाह्य जगत के पीछे विद्यमान चैतन्य सत्ता है। यही ब्रह्म है, जो उपनिषदों की एकमात्र विषय वस्तु है तथा वेदांत के अनुसार जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। ——**स्वामी घनानंद** (रामकृष्ण मठ, नागपुर से प्रकाशित **'ध्यान'** से साभार)

-: ध्यान के बिना दूसरा कोई उपाय नहीं :-

किसी भी बुद्ध पुरुष के वचनों को पूरा–पूरा समझना हो, तब तो ध्यान के सिवाय कोई उपाय नहीं है। लेकिन थोड़ी–थोड़ी झलक मिल सकती है, ध्यान के बिना भी। थोड़ी–थोड़ी भनक पड़ सकती, बिना ध्यान के भी। और अगर यह भनक न पड़ती होती तो फिर तुम चलोगे ही कैसे। तब तो तुम कहोगे, जब ध्यान होगा, तब समझ में आएगा। और जब तक समझ में नहीं आया, तब तक चलें कैसे? और जब तक चलोगे नहीं, तब तक ध्यान कैसे होगा। तब तो तुम एक बड़े चक्कर में पड़ जाओगे, एक दुष्चक्र में पड़ जाओगे।

तो दो बातें ख्याल रखना। यह बात सच नहीं होती है कि जो बुद्ध पुरुष कहते हैं, वह तुमने बुद्धि से सिर्फ सुन लिया और पूरा समझ में आ गया। नहीं, अगर इतने से ही समझ में आ जाए तो फिर ध्यान की कोई आवश्यकता ही न रहेगी। न ही यह बात सच है कि जब ध्यान होगा, तभी समझ में आएगा। क्योंकि अगर ध्यान होगा, तभी समझ में आएगा। तब तो तुम ध्यान भी कैसे करोगे? क्योंकि बुद्धपुरुषों में कुछ रस आने लगे, तभी तो ध्यान में लगोगे न! तो बुद्धपुरुषों की वाणी सुनते समय पूरी तो समझ में नहीं आती। कभी नहीं आती। पूरी तो तभी समझ में आएगी, जब तुम भी बुद्धपुरुष हो जाओगे। जब तुम भी उन जैसे हो जाओगे, तभी पूरा अनुभव होगा। लेकिन अभी थोड़ी भनक तो पड़ सकती है।

जब छोटा बच्चा चलना शुरू करता है तो अभी दौड़ नहीं सकता, यह बात सच है, लड़खड़ा तो सकता है। और अगर तुम कहो कि अभी लड़खड़ा भी नहीं सकता, तब तो फिर कभी चल ही न सकेगा। छोटा बच्चा जब पहले कदम उठाता है तो देखा कैसा डरा–डरा, सहारे की आकांक्षा रखता है। माँ का हाथ पकड़ कर हिम्मत करके दो कदम चल लेता है। छोटे बच्चे के पास पैर तो है, उसके शरीर को संभालने योग्य उपयुक्त हैं। तुम्हारे बराबर पैर नहीं, तो तुम्हारे बराबर शरीर भी नहीं है, लेकिन अनुपात ठीक उतना ही है, जितना तुम्हारा। तुम्हारे बड़े शरीर को संभालने के लिए बड़े पैर हैं, उसके छोटे शरीर को संभालने के लिए छोटे पैर हैं।

लेकिन उसके शरीर को संभालने के लिए पर्याप्त पैर हैं। मगर अभी अनुभव नहीं है। उसे यह भरोसा नहं है कि मैं खड़ा हो सकूंगा। उसे यह आत्मविश्वास नहीं है। तो माँ का हाथ पकड़कर चल लेता है। गुरु का हाथ पकड़ कर चलने का इतना ही अर्थ होता है कि जहाँ तुम अभी नहीं चले हो–यद्यपि चल सकते हो, लेकिन तुमने कभी प्रयास नहीं किया है तो कोई, जो चल चुका होता है, कोई जो चल रहा है, तुम उसका हाथ पकड़ लेते हो। फिर धीरे–धीरे माँ अपना हाथ छुड़ाने लगती है। फिर अंगुली ही पकड़ा रखती है, फिर धीरे–धीरे अंगुली भी खींच लेती है। एक दिन बच्चा पाता है कि अरे, वह तो खुद ही खड़ा होकर चल सकता है।

—— ओशो रजनीश

प्रस्तुतिः— **श्री श्री अभिषेक कुमार** (महाविद्याओं के सिद्ध साधक एवं मंत्र, तंत्र, यंत्र विशेषज्ञ)

संपूर्ण ध्यान योग एवं परमेश्वर की शुद्धतम भक्ति कैसे की जाय तथा निर्गुण निराकार शुद्ध सच्चिदानंद परब्रह्म परमेश्वर की संपूर्ण उपासना एवं ध्यान के बारे में विशेष जानकारी तथा प्राण–प्रतिष्ठित श्रीयंत्र प्राप्त करने हेतु आप एक बार अवश्य मिलें:— **श्री अभिषेक जी महाराज**
(श्रीविद्या के महा-आचार्य, महाविद्याओं के सिद्ध साधक, मंत्र, तंत्र, यंत्र विशेषज्ञ, शक्ति सिद्धांत के व्याख्याता, ज्योतिषाचार्य, हस्तरेखाशास्त्री एवं वास्तुशास्त्री, इस्लामी यंत्रों के विशेष जानकार)
शक्ति अनुसंधान केन्द्र, मो०— हजारी, नून का चौराहा, पटना सिटी, पटना—8.
अगर आप तुरंत प्रत्यक्ष मिल सकने में असमर्थ हैं, तो फोन द्वारा भी अपनी समस्याओं का समाधान करा सकते हैं, अथवा हमें ईमेल भी कर सकते हैं।
Mob:- 9852208378, 9525719407 E-mail:- shaktianusandhankendra@gmail.com

-: भारत के प्रमुख संत, महात्मा एवं आध्यात्मिक लेखक :-

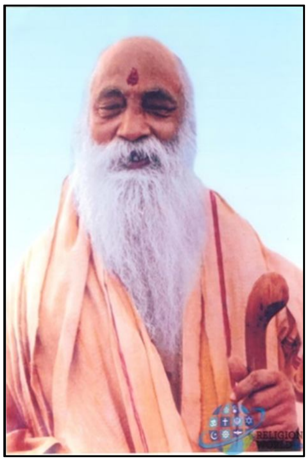
स्वामी रामसुखदास

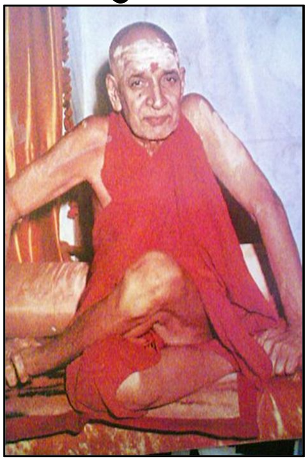
स्वामी करपात्री जी

स्वामी विवेकानंद

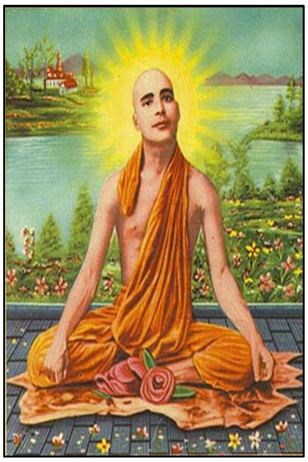
स्वामी रामतीर्थ

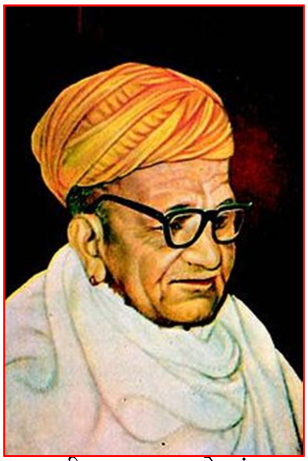
श्री जयदयाल गोयदंका

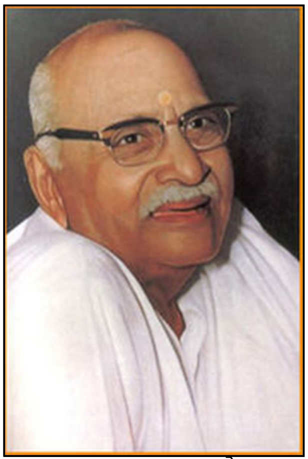
हनुमान प्रसाद पोद्दार

महर्षि मेंही

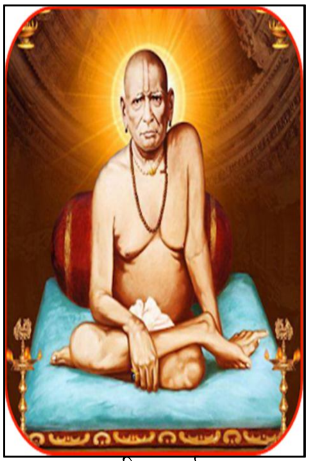
स्वामी समर्थ

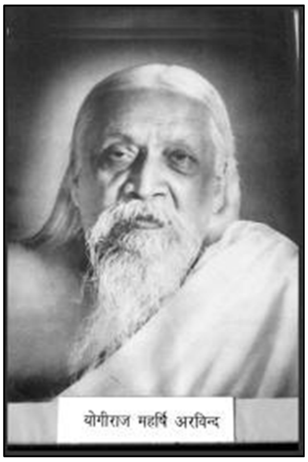

महर्षि अरविंद

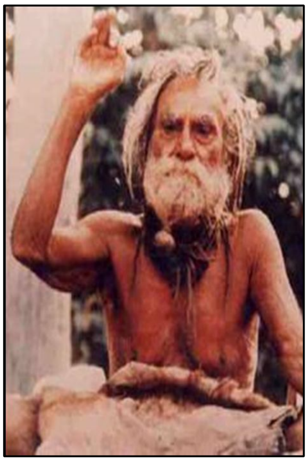
देवराहा बाबा

डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली

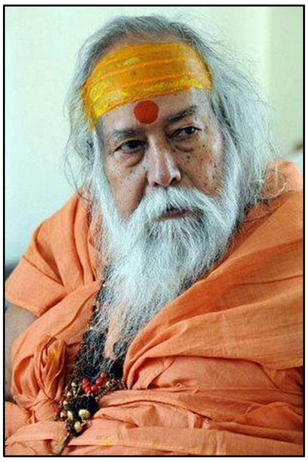
शंकराचार्य स्वरूपानंद सरस्वती

योगी परमहंस स्वामी

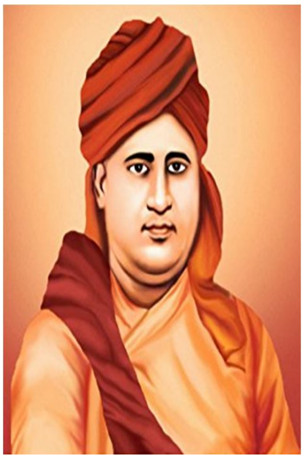
दयानंद सरस्वती

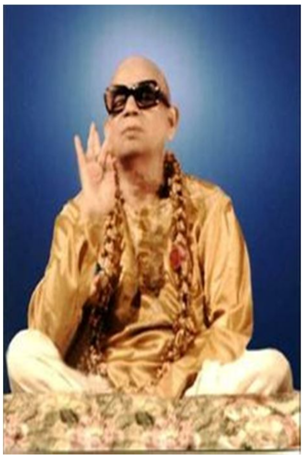
श्री श्री आनंदमूर्त्ति

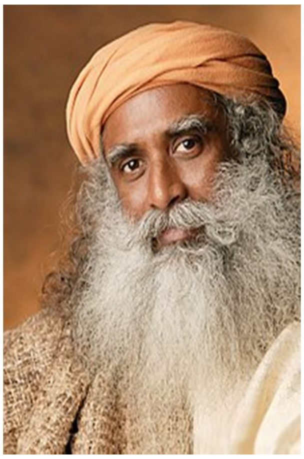
सद्गुरु जग्गी वासुदेव